सामाजिक विज्ञान
हमारे अतीत-2
कक्षा 7 के लिए
इतिहास की पाठ्यपुस्तक

सामाजिक विज्ञान

हमारे अतीत-2

कक्षा 7 के लिए
इतिहास की पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
मई 2007 ज्येष्ठ 1929

पुनर्मुद्रण
नवंबर 2007 कार्तिक 1929
जनवरी 2009 पौष 1930
दिसंबर 2009 पौष 1931
जनवरी 2011 माघ 1932
जनवरी 2012 माघ 1933
अक्तूबर 2012 आश्विन 1934
नवंबर 2013 कार्तिक 1935

PD 55T RPS

₹ 50.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा दी सैन्ट्रल प्रैस (प्रा.) लि., 123/443, फैक्टरी एरिया, फज़ल गंज, कानपुर 208 012 (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित।

ISBN 81-7450-755-8

एन.सी.ई.आर.टी., प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 — **Phone : 011-26562708**

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बैंगलूरु 560 085 — **Phone : 080-26725740**

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 — **Phone : 079-27541446**

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप
पनिहटी
कोलकाता 700 114 — **Phone : 033-25530454**

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 — **Phone : 0361-2674869**

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*अशोक श्रीवास्तव*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*कल्याण बनर्जी*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*गौतम गांगुली*
मुख्य संपादक (संविदा सेवा)	:	*नरेश यादव*
उत्पादन अधिकारी	:	*अरुण चितकारा*

आवरण एवं सज्जा
आर्ट क्रिएशंस

कार्टोग्राफ़ी
कार्टोग्राफ़िक डिज़ाइन एजेंसी

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाये हुए है। नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नये ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितनी वार्षिक कैलेण्डर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन और इस पाठ्यपुस्तक समिति के मुख्य सलाहकार नीलाद्रि भट्टाचार्य की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री और सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं

प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति

हरि वासुदेवन, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता

मुख्य सलाहकार

नीलाद्रि भट्टाचार्य, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सलाहकार

कुणाल चक्रबर्ती, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

सुनील कुमार, *रीडर*, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सदस्य

अनिल सेठी, *पूर्व प्रोफ़ेसर*, सा.वि.शि.वि., रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

कुमकुम रॉय, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, इतिहास अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

केशवन वेलूथट, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, मंगलोर विश्वविद्यालय, मंगलौर, कर्नाटक

चेतन सिंह, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश

नैना दास गुप्ता, *लेक्चरर*, इतिहास विभाग, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

फरहत हसन, *रीडर*, इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

भैरवी प्रसाद साहू, *प्रोफ़ेसर* तथा *विभागाध्यक्ष*, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मिली राय, *सीनियर लेक्चरर*, सा.वि.शि.वि., रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

रजत दत्ता, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

राजन गुरूकुल, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास विभाग, महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, कोट्टायम, केरल

विजया रामास्वामी, *प्रोफ़ेसर*, इतिहास अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

शुचि बजाज, *पी.जी.टी.*, इतिहास, स्प्रिंगडेल्स स्कूल, पूसा रोड, नयी दिल्ली

सरीला मित्रा, *पी.जी.टी.*, इतिहास, वसंत वैली स्कूल, वसंत कुंज, नयी दिल्ली

सी.एन. सुब्रहमणियम, *निदेशक*, एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, मध्य प्रदेश

हिंदी अनुवाद

अनिल सेठी, रा.शै.अ.प्र.प.

कुसुम बाँठिया, *भूतपूर्व रीडर*, देशबन्धु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

परशुराम, *भूतपूर्व निदेशक (राजभाषा)*, भारत सरकार

रीतू सिंह, रा.शै.अ.प्र.प.

संजीव कुमार, *सीनियर लेक्चरर*, देशबन्धु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सीमा एस. ओझा, *लेक्चरर*, सा.वि.शि.वि., रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

सदस्य-समन्वयक

रीतू सिंह, *लेक्चरर*, सा.वि.शि.वि., रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

आभार

यह पुस्तक एक वर्ष के चिंतन, चर्चा, विचार-विमर्श और पुनर्लेखन का नतीजा है, जो पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के सदस्यों की योग्यता और समर्पण का प्रतिफल है। इस समय में हमने एक-दूसरे से बहुत सीखा। हमें उम्मीद है कि प्रकाशित पुस्तक चर्चा, लेखन और पुनर्लेखन के लंबे दौर के उत्साह और खुशियों को प्रतिबिंबित करती है। पुस्तक समिति के प्रत्येक सदस्य को उनकी अपनी-अपनी संस्थाओं एवं परिवारों से बहुत सहयोग और प्रोत्साहन मिला। इस अवसर पर हम उन सब को धन्यवाद देना चाहेंगे।

रा.शै.अ.प्र.प. की निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्य, प्रोफ़ेसर जे.एस. ग्रेवाल और शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर मुज़फ्फर आलम ने अनेक अध्यायों पर अपनी टिप्पणियाँ दीं और हमारी प्रत्येक समस्या को बड़ी उदारता से सुलझाया। वियना विश्वविद्यालय की प्रोफ़ेसर एबा कोच ने अपने अनेक चित्र और तस्वीरों का उपयोग करने की इजाज़त दी। दिल्ली विश्वविद्यालय के पी.जी.डी.ए.वी. कालेज की डॉ. मीरा खरे ने कुछ प्रश्नों के उत्तर देने में बहुत तत्परता दिखाई और अनेक जानकारियाँ और चित्र प्रदान करके हमारी मदद की। हम इन सबके अत्यंत आभारी हैं।

आर्ट क्रिएशन्स की ऋतु टोपा द्वारा की गई किताब की बनावट और सज्जा के लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। इस पुस्तक के मानचित्र सतीश मौर्य ने बनाए हैं। हम उनकी सहनशीलता, तत्परता और कार्य-कुशलता के लिए उनके कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तक के विकास के विभिन्न चरणों में सहयोग के लिए हम *डी.टी.पी. ऑपरेटर*, गुरिन्दर सिंह राय, अनिल शर्मा, ईश्वर सिंह एवं विजय कौशल; *कॉपी एडिटर*, अंजना बख्शी; *प्रूफ रीडर*, अचल कुमार, शशि देवी तथा *कंप्यूटर इंचार्ज*, दिनेश कुमार का भी आभार व्यक्त करते हैं। इन सभी साथियों ने अपने-अपने कार्य तत्परता और कुशलता से पूरे किए।

चित्रों एवं मानचित्रों के लिए आभार

हम निम्न लोगों का आभार व्यक्त करते हैं।

चित्र के लिए आभार

...... *दिल्ली, आगरा, जयपुर : द गोल्डन ट्रायंगल* (अध्याय 4 चित्र 1); आर्चर, मिल्डरेड, *अर्ली व्यू ऑफ़ इंडिया, द पिक्चर्सक्यू जर्नीज़ ऑफ़ थॉमस एंड विलियम डेनिएल, 1786-1794,* (अध्याय 5, चित्र 4);
ऑर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया. *क़ुत्ब मीनार एंड एडजॉइनिंग मोनुमेंट्स,* (अध्याय 3, चित्र 2; अध्याय 5, चित्र 2क, 2ख, 5क, 5ख);
अशर, कैथेरीन एंड सिंथिया टालबोट. *इंडिया बिफोर यूरोप,* (अध्याय 10, चित्र 8);
अटिल, इसिन. द *ब्रश ऑफ़ दी मॉस्टर्स : ड्राइंग्स फ़्रॉम ईरान एंड इंडिया* (पिछला आवरण, अध्याय 3, चित्र 1);
बंद्योपाध्याय, अमियकुमार. *बंकुरार मंदिर,* (अध्याय 9, चित्र 11, 12, 13, 14);
बेले, सी.ए.एन. *इलस्ट्रेटिड हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न इंडिया,* 1600-1947 (अध्याय 10, चित्र 2, 4);
बीच, मिलो सी. एंड एबा कोच. *किंग ऑफ़ दी वर्ल्ड, द पादशाहनामा* (अध्याय 4, चित्र 3, 4, 5, 6);
ब्रांड, माइकेल एंड गलेन डी. लॉरी *(संपा.) फतेहपुर सीकरी* (अध्याय 5, चित्र 17);
ब्राउन, परसी. *इंडियन ऑर्किट्रेक्चर (इस्लामिक पीरियड)* (अध्याय 3, चित्र 4, 5);
सेंटर फॉर कल्चरल रीसोर्स एंड ट्रेनिंग, नयी दिल्ली (अध्याय 2, चित्र 4; अध्याय 3, चित्र 3; अध्याय 5, चित्र 1; अध्याय 9, चित्र 3, 5);
दास, अनंत. *जाट वैष्णव कथा* (अध्याय 8, चित्र 7);
देसाई, देवांगना. *खजुराहो- मोनुमेंट्स लीगेसी* (अध्याय 5, चित्र 3ख);
इटॉन, रीचर्ड. *सूफ़ीस ऑफ़ बीजापुर* (अध्याय 8, चित्र 6);
इडवरडेस, माइकेल. *इंडियन टेम्पल्स एंड पैलेसेस* (अध्याय 2, चित्र 1, अध्याय 5, चित्र 3क);
इहर्लस, इकारट एंड थॉमस रॉफ्ट. *शाहजहाँनाबाद/पुरानी दिल्ली: ट्रेडिसन एंड कोलोनियल चेंज* (अध्याय 5, चित्र 15);
इवेसन, नॉरमैन. द *इंडियन मैट्रोपॉलिस* (अध्याय 6, चित्र 2, 8);
गैसकॉगानी, बामबर. द *ग्रेट मुग़ल्स* (अध्याय 4, चित्र 7, 9);
गोस्वामी, बी.एन. द *वर्ड इज़ सेक्रेड, सेक्रेड इज़ द वर्ड* (अध्याय 2, चित्र 2; अध्याय 8, चित्र 1; अध्याय 9, चित्र 2);
हूजा, रीमा. *ए हिस्ट्री ऑफ़ राजस्थान* (अध्याय 10, चित्र 5);
आइओनस, वेरोनिका. *इंडियन माइथोलॉजी* (अध्याय 6, चित्र 1);

कोच, एबा. *शाहजहाँ एंड ऑरफेंस*
(अध्याय 5, चित्र 12);
कोच, एबा. द *कम्पलीट ताजमहल*
(अध्याय 4, चित्र 2; अध्याय 5, चित्र 6, 9, 10, 11, 13, 14);
कोच, एबा. *मुग़ल ऑर्किटेक्चर*
(अध्याय 5, चित्र 16);
कोठारी, सुनील. कत्थक : *इंडियन क्लासिकल डांस आर्ट*
(अध्याय 9, चित्र 6);
लॉफोंट, जीन-मेरी. *महाराजा रणजीत सिंह : लॉर्ड ऑफ़ दी फाइव रीवर्स*
(अध्याय 10, चित्र 6, 7);
मोसेलॉस, जिम, जेकी मेंजेस, प्रतापादित्या पाल. *डाँसिग टू दी फ्लूट : म्यूज़िक एंड डांस इन इंडियन आर्ट*
(अध्याय 7, चित्र 1; अध्याय 8, चित्र 4, 8, 9; अध्याय 9, चित्र 8, 9);
माइकल, जॉर्ज एंड वसुंधरा फिलीओजेट. *स्पलेंडरस ऑफ़ दी विजयनगर इम्पायर- हम्पी*
(अध्याय 6, चित्र 6, 7);
माइकल, जॉर्ज. *ऑर्किटेक्चर एंड आर्ट ऑफ़ सदर्न इंडिया*
(अध्याय 8, चित्र 2);
पाल, प्रतापादित्या. *कोर्ट पेंटिंग्स ऑफ़ इंडिया*
(अध्याय 7, चित्र 2; अध्याय 8, चित्र 3; अध्याय 9, चित्र 4, 7, 8);
सफ़ादी, वाई.एच. *इस्लामिक कैलीग्राफ़ी*
(अध्याय 1, चित्र 2);
सिंह, रूपेंदर, *गुरु नानक : हिज़ लाइफ एंड टीचिंग्स*
(अध्याय 8, चित्र 11);
स्ट्राँग, सूसान. द *आर्ट्स ऑफ़ दी सिख किंग्डम्स*
(अध्याय 6, चित्र 4, 5; अध्याय 8, चित्र 10, पेज xii)
सुब्रामणियम, संजय. *द केरियर एंड लिजेंड ऑफ़ वास्को डी गामा*
(अध्याय 6, चित्र 9);
थैक्सटन, व्हीलर एम. (ट्रांसलेटेड, एडीटिड एंड एनोटेड), *जहाँगीरनामा, मेमोरीज़ ऑफ़ जहाँगीर, एम्परर ऑफ इंडिया*
(अध्याय 4, चित्र 8);
वेल्च, स्टूअर्ट कैरी. *इंडिया, आर्ट एंड कल्चर* : 1300-1900
(अध्याय 7, चित्र 4, 6, 7; अध्याय 8, चित्र 5);
वेल्च, स्टूअर्ट कैरी. *इम्पीरियल मुग़ल पेंटिंग*
(अध्याय 1, चित्र 1);

मानचित्र के लिए आभार

श्वाट्ज़बर्ग, जे.ई. *ए हिस्टोरिकल एटलस ऑफ़ साउथ एशिया*
(अध्याय 1, मानचित्र 1, 2);

विभिन्न किताबों एवं एटलसों से लिए गए सम्पादित तथा प्रयोग में लाए गए मानचित्र :

अशर, केथराइन एंड सिंथिया टॉलबोट. *इंडिया बिफोर यूरोप*
(अध्याय 3, मानचित्र 3; अध्याय 4, मानचित्र 1);
बेले, सी.ए. *इंडियन सोसाइटी एंड दी मेकिंग ऑफ़ दी ब्रिटिश एम्पायर*
(अध्याय 10, मानचित्र 1, 2);
फरकेनबर्ग, आर.ई. (संपा.) *देहली थ्रू द ऐजिस*
(अध्याय 3, मानचित्र 1);
हबीब, इरफान. *एन एटलस ऑफ दी मुग़ल एम्पायर*
(अध्याय 7, मानचित्र 2);
कुमार, सुनील. *इमरजेंस ऑफ़ दी देहली सल्तनत*
(अध्याय 3, मानचित्र 2);
श्वाट्ज़बर्ग, जे. ई. *ए हिस्टोरिकल एटलस ऑफ़ साउथ एशिया*
(अध्याय 1, मानचित्र 3)

विषय सूची

इस पुस्तक में

प्रत्येक अध्याय को कई भागों में बाँटा गया है। इन भागों को पढ़ने, इस पर आपस में बातचीत करने और समझने के बाद ही अगले अध्याय की शुरुआत कीजिए। प्रत्येक अध्याय में निम्न पर ध्यान दीजिए।

1

परिभाषा

कुछ अध्यायों में परिभाषाएँ दी गई हैं।

2

अतिरिक्त जानकारी

बहुत से अध्यायों में रोचक जानकारी युक्त अतिरिक्त बॉक्स दिए गए हैं।

3

स्रोत बॉक्स

बहुत से अध्यायों में *स्रोत* से एक अंश दिया गया है। इन्हीं के आधार पर इतिहासकार, इतिहास लिखते हैं। इन्हें ध्यान से पढ़कर, इनमें दिए गए प्रश्नों पर चर्चा कीजिए।

हमारे बहुत सारे स्रोत, चित्रों के रूप में हैं। प्रत्येक *चित्र* की अपनी एक कहानी है।

4

आपको कुछ अध्यायों में मानचित्र भी मिलेंगे। इन्हें ध्यानपूर्वक देखकर अपने अध्याय में बताए गए स्थानों को ढूँढिए।

5

?

प्रत्येक अध्याय में कुछ अंतर्निहित प्रश्न एवं क्रियाकलाप दिए गए हैं, जिन्हें विशेष रूप से दर्शाया गया है। इन पर विचार-विमर्श के लिए कुछ समय दीजिए।

6

अन्यत्र

प्रत्येक अध्याय के अंत में एक 'अन्यत्र' नामक खंड दिया गया है। आप अपने अध्याय में जिन घटनाओं को पढ़ रहे हैं, उन्हीं दिनों में दुनिया के अन्य भागों में कौन-सी घटनाएँ हो रही थी, उसकी एक झलक दिखाने के लिए इसे दिया गया है।

7

कल्पना करें

एक छोटा-सा खंड है 'कल्पना करें' अब आपकी बारी है अतीत में जाकर उस समय में जीवन का जायज़ा लेने की।

8

बीज शब्द

प्रत्येक अध्याय के अंत में आपको बीज शब्दों की एक सूची मिलेगी। ये आपको अध्याय में आए महत्त्वपूर्ण विचारों/विषयों की फिर से याद दिलाएँगे।

9

प्रत्येक अध्याय के अंत में विभिन्न तरह के कार्यकलाप दिए गए हैं – **फिर से याद करें**, **आइए समझें**, **आइए विचार करें** तथा **आइए करके देखें**।

इस तरह आपके पढ़ने, देखने, सोचने और करने के लिए इस पुस्तक में बहुत कुछ है। हमें पूरी आशा है कि आपको इसमें बहुत खुशी मिलेगी।
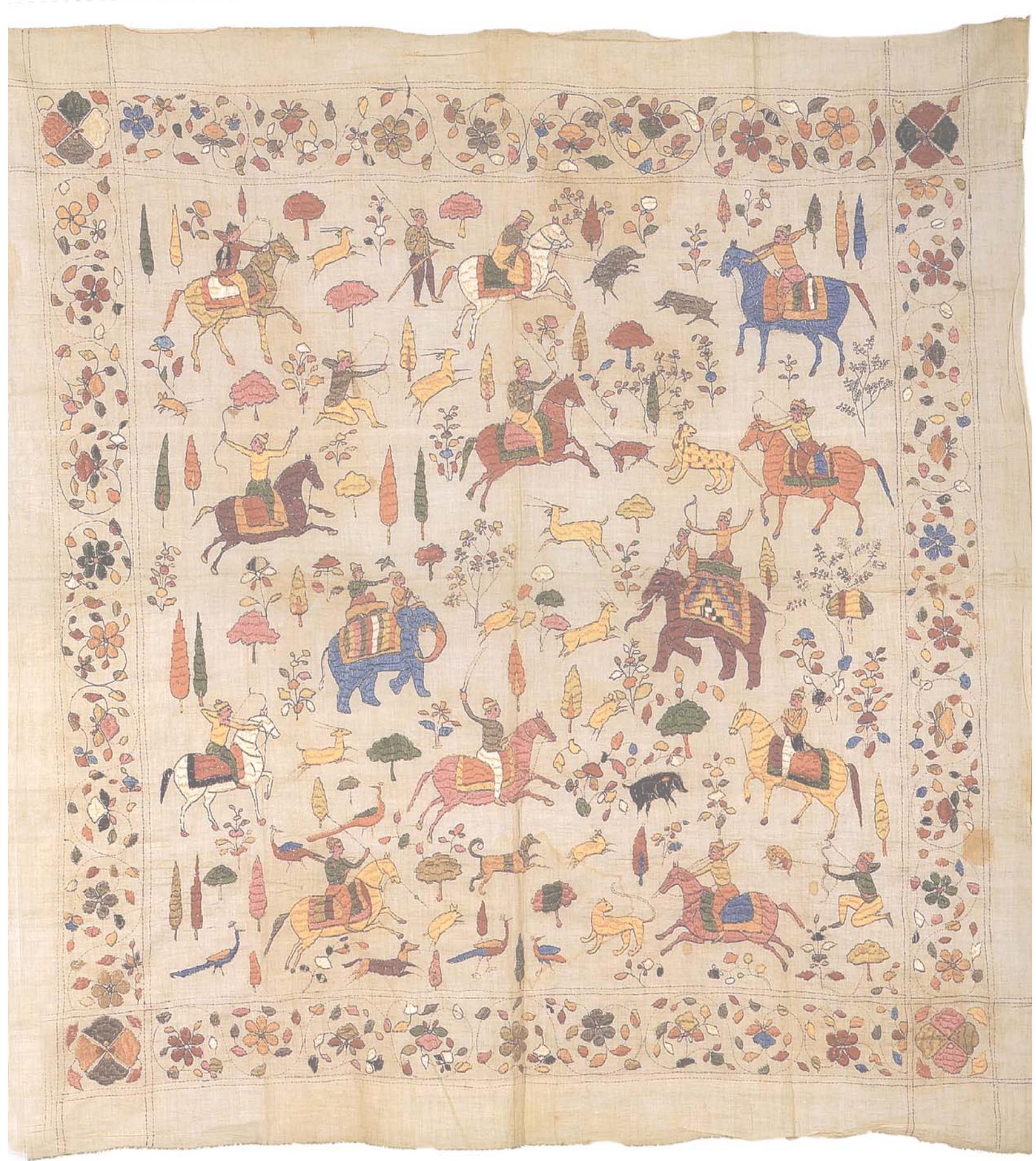
1 हज़ार वर्षों के दौरान हुए परिवर्तनों की पड़ताल

मानचित्र 1
बारहवीं सदी के भूगोलवेत्ता अल-इद्रीसी का बनाया हुआ दुनिया के नक्शे का एक हिस्सा जिसमें भारतीय उपमहाद्वीप दिखाया गया है।
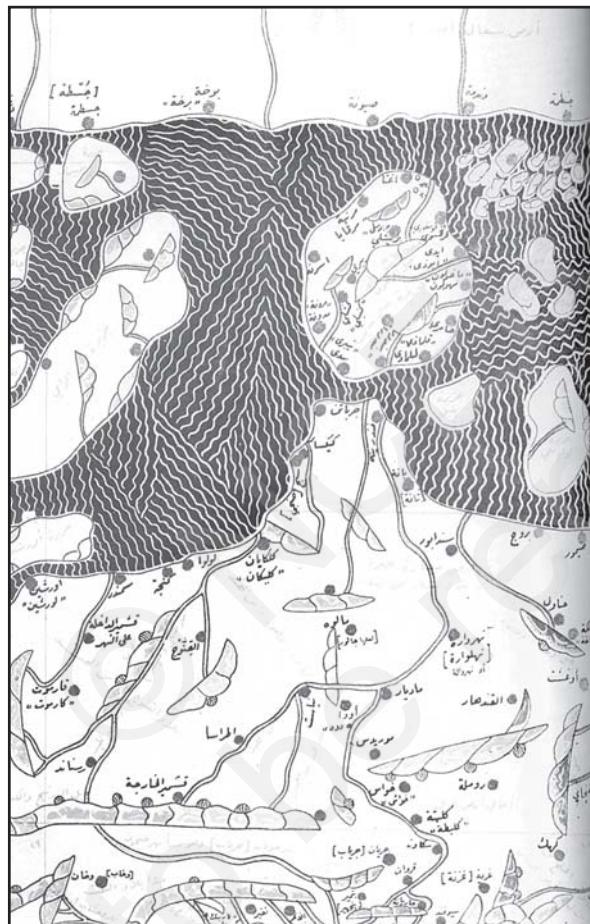
मानचित्र 1 और 2 पर नज़र डालिए। मानचित्र 1 अरब भूगोलवेत्ता अल-इद्रीसी ने 1154 में बनाया था। यहाँ जो नक्शा दिया गया है वह उसके द्वारा बनाए गए दुनिया के बड़े मानचित्र का एक हिस्सा है और भारतीय उपमहाद्वीप को दर्शाता है। मानचित्र 2 एक फ्रांसीसी **मानचित्रकार** ने 1720 में बनाया था। दोनों नक्शे एक ही इलाके के हैं मगर उनमें काफ़ी अंतर हैं। अल-इद्रीसी के नक्शे में दक्षिण भारत उस जगह है जहाँ हम आज उत्तर भारत ढूँढेंगे और श्रीलंका का द्वीप ऊपर की तरफ़ है। जगहों के नाम अरबी

मानचित्रकार
जो व्यक्ति मानचित्र/नक्शे बनाता है।
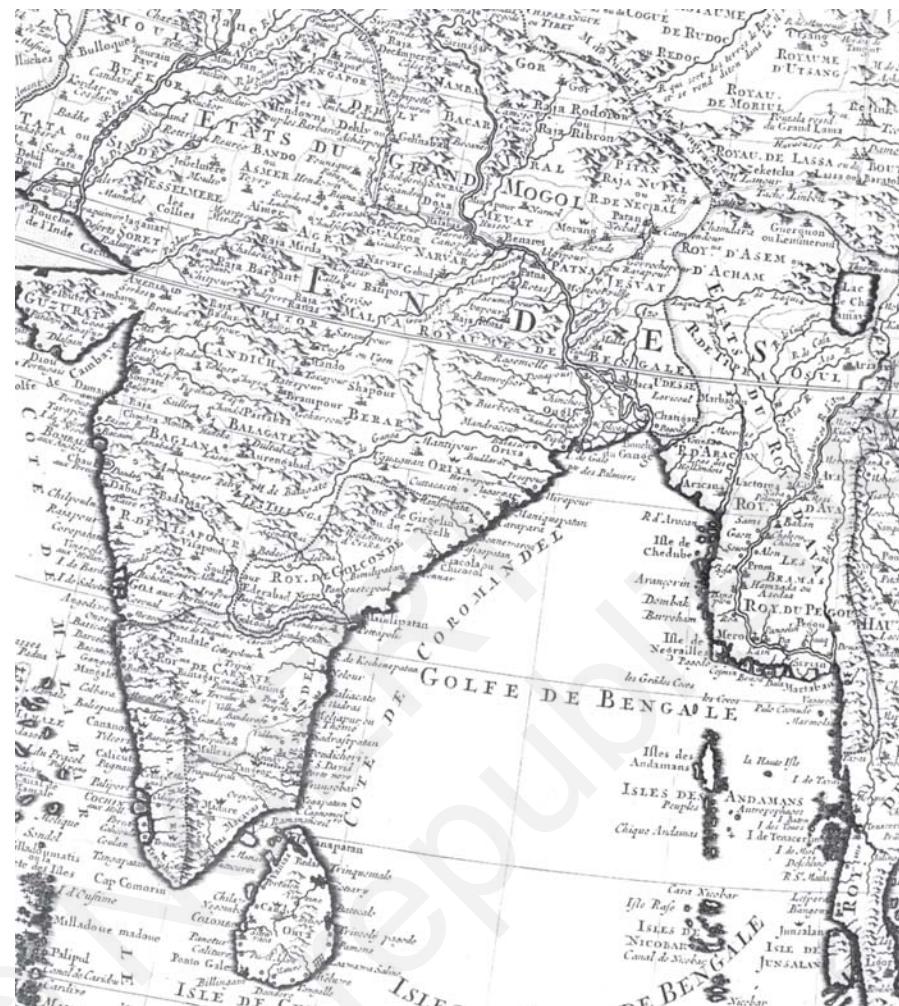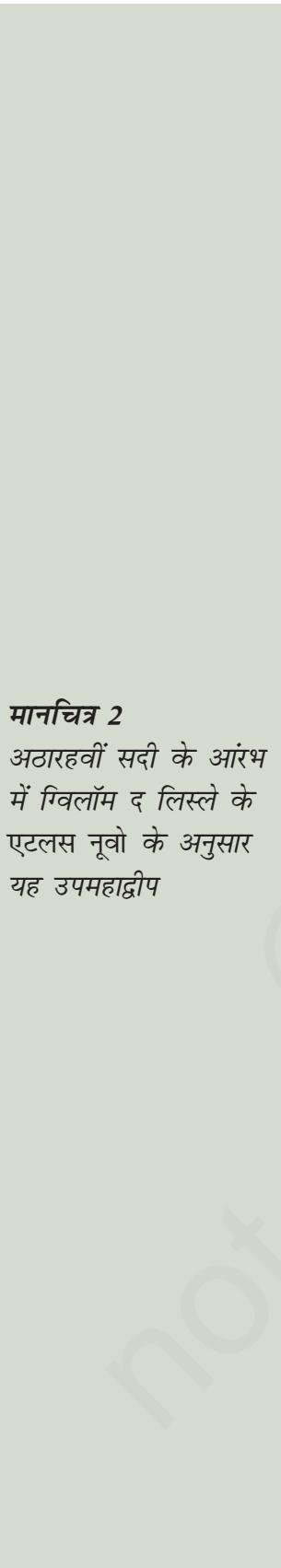
मानचित्र 2
अठारहवीं सदी के आरंभ में ग्विलॉम द लिस्ले के एटलस नूवो के अनुसार यह उपमहाद्वीप

में दिए गए हैं और उनमें कुछ जाने-पहचाने नाम भी हैं, जैसे कि उत्तर प्रदेश का कन्नौज। मानचित्र 2 पहले मानचित्र के बनने के लगभग 600 वर्ष बाद बनाया गया। इस कालावधि में उपमहाद्वीप के बारे में सूचनाएँ काफ़ी बदल गईं थीं। यह नक्शा हमें ज़्यादा परिचित लगेगा। उसमें विशेषकर तटीय इलाकों के बारीक ब्यौरे देखकर आश्चर्य होता है। यूरोप के नाविक तथा व्यापारी अपनी समुद्र यात्रा के लिए इस नक्शे का इस्तेमाल किया करते थे (देखें अध्याय 6)।

?

लेकिन अब भीतरी इलाकों पर नज़र डालें। क्या इनमें भी उतने ही ब्यौरे हैं जितने समुद्र तट वाले हिस्से में? गंगा के मार्ग को देखें। इसे किस तरह से दर्शाया गया है? इस मानचित्र में तटीय और भीतरी इलाकों के बीच ब्यौरों और बारीकी का जो अंतर है, आपके ख्याल में उसका कारण क्या है?

इतनी ही महत्त्वपूर्ण एक और बात यह है कि दूसरे युग तक मानचित्र-अंकन का विज्ञान भी बहुत बदल गया था। इतिहासकार जब बीते युगों के दस्तावेज़ों, नक्शों और लेखों का अध्ययन करते हैं तो उनके लिए उन सूचनाओं के संदर्भों का, उनकी भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक पृष्ठभूमियों का ध्यान रखना ज़रूरी होता है।

नई और पुरानी शब्दावली

अगर समय के साथ-साथ सूचनाओं के संदर्भ बदलते हैं, तो भाषा और अर्थों के साथ क्या होता है? ऐतिहासिक अभिलेख कई तरह की भाषाओं में मिलते हैं और ये भाषाएँ भी समय के साथ-साथ बहुत बदली हैं। उदाहरण के लिए मध्ययुग की फ़ारसी, आधुनिक फ़ारसी भाषा से भिन्न है। यह भिन्नता सिर्फ़ व्याकरण और शब्द भंडार में ही नहीं आई है, समय के साथ शब्दों के अर्थ भी बदल जाते हैं।

उदाहरण के लिए 'हिंदुस्तान' शब्द ही लीजिए। आज हम इसे आधुनिक राष्ट्र राज्य 'भारत' के अर्थ में लेते हैं। तेरहवीं सदी में जब फ़ारसी के इतिहासकार मिन्हाज-ए-सिराज ने हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग किया था तो उसका आशय पंजाब, हरियाणा और गंगा-यमुना के बीच में स्थित इलाकों से था। उसने इस शब्द का राजनीतिक अर्थ में उन इलाकों के लिए इस्तेमाल किया जो दिल्ली के सुलतान के अधिकार क्षेत्र में आते थे। सल्तनत के प्रसार के साथ-साथ इस शब्द के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र भी बढ़ते गए, लेकिन हिंदुस्तान शब्द में दक्षिण भारत का समावेश कभी नहीं हुआ। इसके विपरीत, सोलहवीं सदी के आरंभ में बाबर ने हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग इस उपमहाद्वीप के भूगोल, पशु-पक्षियों और यहाँ के निवासियों की संस्कृति का वर्णन करने के लिए किया। यह प्रयोग चौदहवीं सदी के कवि अमीर ख़ुसरो द्वारा प्रयुक्त शब्द 'हिंद' के ही कुछ-कुछ समान था। मगर जहाँ 'भारत' को एक भौगोलिक और सांस्कृतिक सत्त्व के रूप में पहचाना जा रहा था वहाँ हिंदुस्तान शब्द से वे राजनीतिक और राष्ट्रीय अर्थ नहीं जुड़े थे जो हम आज जोड़ते हैं।

क्या आपको ऐसे कुछ और शब्दों का ध्यान आता है जिनके अर्थ भिन्न-भिन्न संदर्भों में बदल जाते हैं?

किसी भी शब्द का प्रयोग करने में इतिहासकारों को बहुत सावधान रहना चाहिए क्योंकि अतीत में उन शब्दों के कुछ अलग ही अर्थ थे। उदाहरण के लिए 'विदेशी' जैसा सीधा-सादा शब्द ही ले लीजिए। हमारे लिए आज इसका अर्थ होता है, ऐसा व्यक्ति जो भारतीय न हो। मध्ययुग

में, मानो किसी गाँव में आने वाला कोई भी अनजाना व्यक्ति, जो उस समाज या संस्कृति का अंग न हो, 'विदेशी' कहलाता था। (ऐसे व्यक्ति को हिंदी में परदेसी और फ़ारसी में अजनबी कहा जा सकता है।) इसलिए किसी नगरवासी के लिए वनवासी 'विदेशी' होता था किंतु एक ही गाँव में रहने वाले दो किसान अलग-अलग धार्मिक या जाति परंपराओं से जुड़े होने पर भी एक-दूसरे के लिए विदेशी नहीं होते थे।

इतिहासकार और उनके स्रोत

इतिहासकार किस युग का अध्ययन करते हैं और उनकी खोज की प्रकृति क्या है, इसे देखते हुए वे अलग-अलग तरह के स्रोतों का सहारा लेते हैं। उदाहरण के लिए पिछले साल आपने गुप्तवंश के शासकों और हर्षवर्धन के बारे में पढ़ा। इस पुस्तक में हम मोटे तौर पर 700 से 1750 ईसवी तक लगभग हज़ार वर्षों के बारे में पढ़ेंगे।

इस काल के अध्ययन के लिए इतिहासकार जिन स्रोतों का प्रयोग करते हैं, उनमें आपको बहुत-सी बातें ऐसी मिलेंगी जो पिछले युग से वैसी ही चली आ रही हैं। इतिहासकार इस काल के बारे में सूचना इकट्ठी करने के लिए अभी भी सिक्कों, शिलालेखों, स्थापत्य (भवन निर्माण कला) तथा लिखित सामग्री पर निर्भर करते हैं। पर कुछ बातें पहले से काफ़ी भिन्न भी हैं। इस युग में प्रामाणिक लिखित सामग्री की संख्या और विविधता आश्चर्यजनक रूप से बढ़ गई। इसके आगे इतिहासकार सूचनाओं के दूसरे प्रकार के स्रोतों का इस्तेमाल धीरे-धीरे कम

कागज़ का मूल्य

इन दो प्रसंगों की तुलना कीजिए:

(1) तेरहवीं सदी के मध्य में एक विद्वान को एक पुस्तक की प्रतिलिपि की ज़रूरत पड़ी। उसके पास उतना कागज़ नहीं था इसलिए उसने एक ऐसी पांडुलिपि को धो डाला जिसकी उसे ज़रूरत नहीं थी, और उसके कागज़ को सुखाकर उसका इस्तेमाल कर लिया।

(2) एक सदी बाद अगर आप बाज़ार से कोई खाद्य पदार्थ खरीदते तो हो सकता है कि आपकी किस्मत अच्छी होती और दुकानदार वह वस्तु कागज़ में लपेटकर देता।

? *तो कागज़ कब अधिक महँगा था और कब आसानी से उपलब्ध था – तेरहवीं शताब्दी में या चौदहवीं शताब्दी में?*

करने लगे। इस समय के दौरान कागज़ क्रमश: सस्ता होता गया और बड़े पैमाने पर उपलब्ध भी होने लगा। लोग धर्मग्रंथ, शासकों के वृत्तांत, संतों के लेखन तथा उपदेश, अर्ज़ियाँ, अदालतों के दस्तावेज़, हिसाब तथा करों के खाते आदि लिखने में इसका उपयोग करने लगे। धनी व्यक्ति, शासक जन, मठ तथा मंदिर, पांडुलिपियाँ एकत्रित किया करते थे। इन पांडुलिपियों को पुस्तकालयों तथा **अभिलेखागारों** में रखा जाता है। इन पांडुलिपियों तथा दस्तावेज़ों से इतिहासकारों को बहुत सारी विस्तृत जानकारी मिलती है मगर साथ ही इनका उपयोग कठिन है।

उन दिनों छापेखाने तो थे नहीं, इसलिए लिपिक या नकलनवीस हाथ से ही पांडुलिपियों की प्रतिकृति बनाते थे। अगर आपने कभी किसी मित्र के गृहकार्य की नकल उतारी है तो आप जानते होंगे कि यह काम आसान नहीं है। कभी-कभी आपको अपने मित्र की लिखावट समझ में नहीं आती होगी और आपको मज़बूर होकर अंदाज़ ही लगाना पड़ता होगा कि क्या लिखा गया है। फलस्वरुप आपके लिखे में मित्र के लिखे हुए से कुछ छोटे-मोटे लेकिन

अभिलेखागार
ऐसा स्थान जहाँ दस्तावेज़ों और पांडुलिपियों को संग्रहित किया जाता है। आज सभी राष्ट्रीय और राज्य सरकारों के अभिलेखागार होते हैं जहाँ वे अपने तमाम पुराने सरकारी अभिलेख और लेन-देन के ब्यौरों का रिकॉर्ड रखते हैं।

चित्र 1
यह एक लघुचित्र की प्रतिकृति है जिसमें एक लिपिक किसी पांडुलिपि की नकल कर रहा है। इस चित्र का आकार सिर्फ़ 10.5 से.मी. 7.1 से.मी. है। इस छोटे आकार के कारण इसे लघुचित्र या मिनियेचर कहा जाता है। कभी-कभी इन लघुचित्रों का प्रयोग लेख में आयी पांडुलिपियों को स्पष्टता प्रदान करने के लिए किया जाता था। ये इतने सुंदर होते थे कि आगे चलकर संग्रहकर्ता अकसर इन चित्रों को पांडुलिपियों से अलग करके बेचने लगे थे।
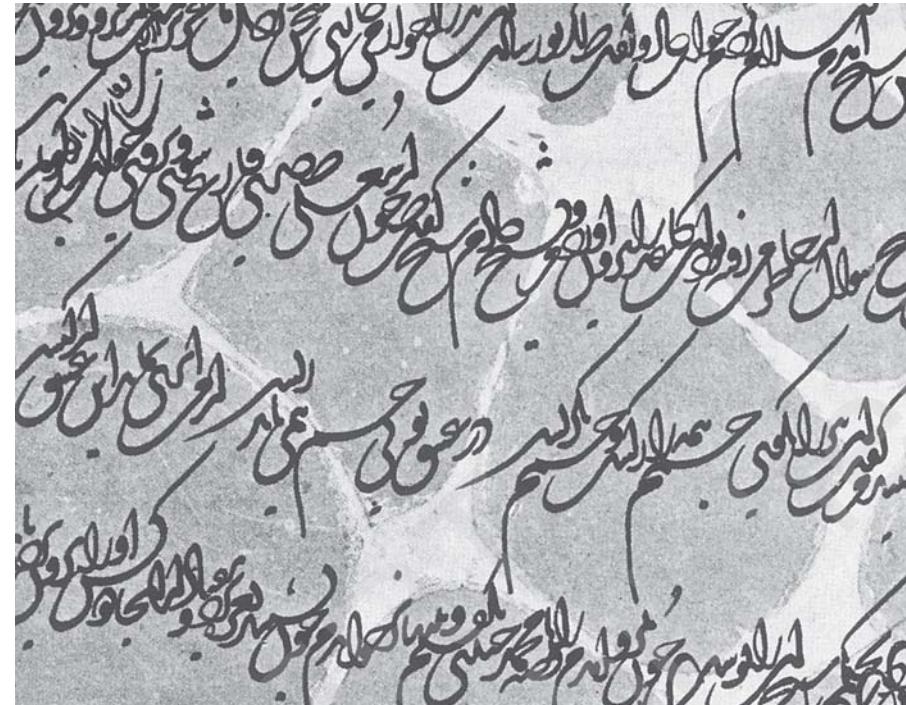
चित्र 2
लिखावट की भिन्न प्रकार की शैलियों के कारण फ़ारसी और अरबी पढ़ने में कठिनाई हो सकती है। नस्तलिक लिपि (बायीं ओर) में वर्ण जोड़कर धाराप्रवाह रूप से लिखे जाते हैं। फ़ारसी, अरबी के जानकारों के लिए इस लिपि को पढ़ना आसान होता है। शिक्स्त लिपि (दायीं ओर) अधिक सघन, संक्षिप्त और कठिन है।

महत्त्वपूर्ण अंतर आ जाते होंगे। पांडुलिपि की प्रतिलिपि बनाने में भी कुछ-कुछ यही होता है। प्रतिलिपियाँ बनाते हुए लिपिक छोटे-मोटे फ़ेर-बदल करते चलते थे, कहीं कोई शब्द, कहीं कोई वाक्य। सदी दर सदी प्रतिलिपियों की भी प्रतिलिपियाँ बनती रहीं और अंततः एक ही मूल ग्रंथ की भिन्न-भिन्न प्रतिलिपियाँ एक-दूसरे से बहुत ही अलग हो गईं। इससे बड़ी गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई क्योंकि आज हमें लेखक की मूल पांडुलिपि शायद ही कहीं मिलती है। हमें बाद के लिपिकों द्वारा बनाई गई प्रतिलिपियों पर ही पूरी तरह निर्भर रहना पड़ता है। इसलिए इस बात का अंदाज़ लगाने के लिए कि मूलतः लेखक ने क्या लिखा था, इतिहासकारों को एक ही ग्रंथ की विभिन्न प्रतिलिपियों का अध्ययन करना पड़ता है।

कई बार लेखक स्वयं भी समय-समय पर अपने मूल वृत्तांत में संशोधन करते रहते थे। चौदहवीं शताब्दी के इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी ने अपना वृत्तांत पहली बार 1356 में और दूसरी बार इसके दो वर्ष बाद लिखा था। दोनों में अंतर है लेकिन 1971 तक इतिहासकारों को पहली बार वाले वृत्तांत की जानकारी ही नहीं थी। यह पुस्तकालयों के विशाल संग्रहों में कहीं दबा पड़ा था।

नए सामाजिक और राजनीतिक समूह

सन् 700 और 1750 के बीच के हज़ार वर्षों का अध्ययन इतिहासकारों के आगे भारी चुनौती रखता है, मुख्य रूप से इसलिए कि इस पूरे काल में बड़े पैमाने पर और अनेक तरह के परिवर्तन हुए। इस काल में अलग-अलग समय पर नई प्रौद्योगिकी के दर्शन होते हैं, जैसे, सिंचाई में रहट, कताई में चर्खे और युद्ध में आग्नेयास्त्रों (बारूद वाले हथियार) का इस्तेमाल। इस उपमहाद्वीप में नई तरह का खान-पान भी आया–आलू, मक्का, मिर्च, चाय और कॉफ़ी। ध्यान रहे कि ये तमाम परिवर्तन–नई प्रौद्योगिकियाँ और फ़सलें–उन लोगों के साथ आए जो नए विचार भी लेकर आए थे। परिणामस्वरूप यह काल आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का भी काल रहा। अध्याय 5, 6 और 7 में आप इनमें से कुछ के बारे में जानेंगे।

इस युग में लोगों की गतिशीलता–एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना-जाना भी बहुत बढ़ गया था। अवसर की तलाश में लोगों के झुंड के झुंड दूर-दूर की यात्राएँ करने लगे थे। इस उपमहाद्वीप में अपार संपदा और अपना भाग्य गढ़ने के लिए अपार संभावनाएँ मौजूद थीं। इस काल में जिन समुदायों का

चित्र 3
रहट
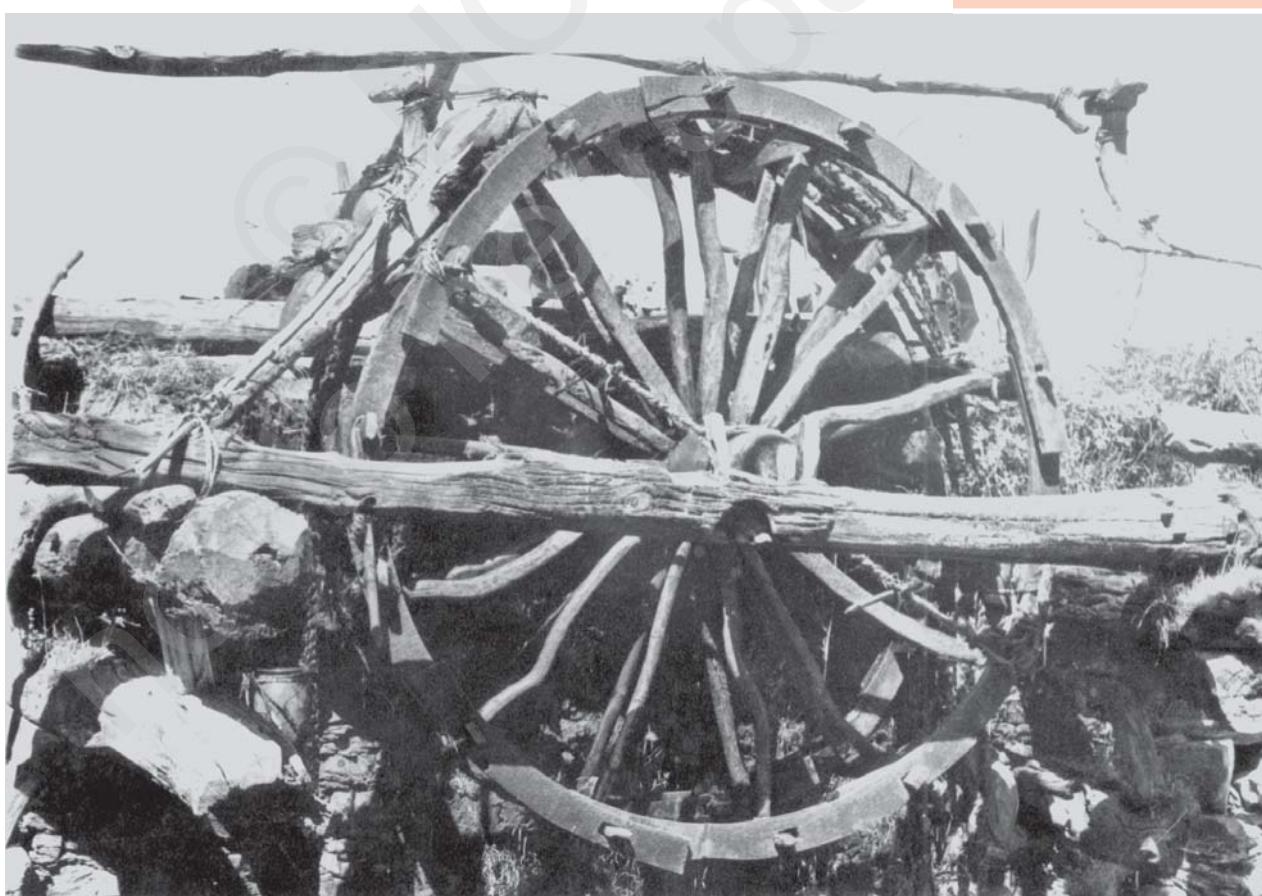
महत्त्व बढ़ा उनमें से एक समुदाय था राजपूत, जिसका नाम 'राजपुत्र' (अर्थात् राजा का पुत्र) से निकला है। आठवीं से चौदहवीं सदी के बीच यह नाम आमतौर पर योद्धाओं के उस समूह के लिए प्रयुक्त होता था जो क्षत्रिय वर्ण के होने का दावा करते थे। 'राजपूत' शब्द के अंतर्गत केवल राजा और सामंत वर्ग ही नहीं, बल्कि वे सेनापति और सैनिक भी आते थे जो पूरे उपमहाद्वीप में अलग-अलग शासकों की सेनाओं में सेवारत थे। कवि और चारण राजपूतों की आचार संहिता–प्रबल पराक्रम और स्वामिभक्ति–का गुणगान करते थे। इस युग में राजनीतिक दृष्टि से महत्त्व हासिल करने के अवसरों का लाभ मराठा, सिक्ख, जाट, अहोम और कायस्थ (मुख्यत: लिपिकों और मुंशियों का कार्य करने वाली जाति) आदि समूहों ने भी उठाया।

पर्यावास
इसका तात्पर्य किसी भी क्षेत्र के पर्यावरण और वहाँ के रहने वालों की सामाजिक और आर्थिक जीवन शैली से है।

इस पूरे काल के दौरान क्रमश: जंगलों की कटाई हो रही थी और खेती का इलाका बढ़ता जा रहा था। कुछ क्षेत्रों में यह परिवर्तन अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक तेजी से और पूरे तौर पर हुआ। **पर्यावास** में परिवर्तन के कारण कई वनवासियों को मज़बूर होकर अपना स्थान छोड़ना पड़ा। कुछ और वनवासी ज़मीन की जुताई करने लगे और कृषक बन गए। कृषकों के ये नए समूह क्षेत्रीय बाज़ार, मुखियाओं, पुजारियों, मठों और मंदिरों से प्रभावित होने लगे। वे बड़े और जटिल समाजों के अंग बन गए। उन्हें कर चुकाने पड़ते थे और स्थानीय मालिक वर्ग की बेगार करनी पड़ती थी। परिणामस्वरूप किसानों के बीच आर्थिक और सामाजिक अंतर उभरने लगे। कुछ के पास ज़्यादा उपजाऊ ज़मीन होती थी, कुछ लोग मवेशी भी पालते थे और कुछ लोग खेती से खाली समय में दस्तकारी आदि का कुछ काम कर लेते थे। जैसे-जैसे समाज में अंतर बढ़ने लगे, लोग जातियों और उपजातियों में बाँटे जाने लगे और उनकी पृष्ठभूमि और व्यवसाय के आधार पर उन्हें समाज में ऊँचा या नीचा दर्जा दिया जाने लगा। ये दर्जे स्थायी नहीं थे। किसी जाति विशेष के सदस्यों के हाथों में कितनी सत्ता, प्रभाव और संसाधनों का नियंत्रण है, इसके आधार पर उसके दर्जे बदलते रहते थे। एक ही जाति का किसी क्षेत्र में कोई दर्जा हो सकता था, और किसी अन्य क्षेत्र में कोई और।

?

इस अनुभाग में जो प्रौद्योगिकीय, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन वर्णित हैं, उनमें से कौन-कौन से परिवर्तन आपकी समझ में आपके शहर या गाँव में सबसे महत्त्वपूर्ण रहे?

अपने सदस्यों के व्यवहार का नियंत्रण करने के लिए जातियाँ स्वयं अपने-अपने नियम बनाती थीं। इन नियमों का पालन जाति के बड़े-बुजुर्गों की एक सभा करवाती थी जिसे कुछ इलाकों में 'जाति पंचायत' कहा जाता था। लेकिन जातियों को अपने निवास के गाँवों के रिवाजों का पालन भी करना पड़ता था। इसके अलावा कई गाँवों पर मुखियाओं का शासन होता था। मिल-मिलाकर वे किसी राज्य की एक छोटी इकाई भर होती थीं।

क्षेत्र और साम्राज्य

चोल (अध्याय 2), तुग़लक़ (अध्याय 3) या मुग़ल (अध्याय 4) जैसे बड़े-बड़े राज्यों के अंतर्गत कई सारे क्षेत्र आ जाते थे। दिल्ली के सुलतान ग़यासुद्दीन बलबन (1266-1287) की प्रशंसा में एक संस्कृत प्रशस्ति (प्रशस्ति के उदाहरण के लिए अध्याय 2 देखिए) में उसे एक विशाल साम्राज्य का शासक बताया गया है जो पूर्व में बंगाल (गौड़) से लेकर पश्चिम में अफ़गानिस्तान के ग़ज़नी (गज्जन) तक फैला हुआ था, और जिसमें संपूर्ण दक्षिण भारत (द्रविड़) भी आ जाता था। गौड़, आंध्र, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात आदि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लोग उसकी सेना के आगे
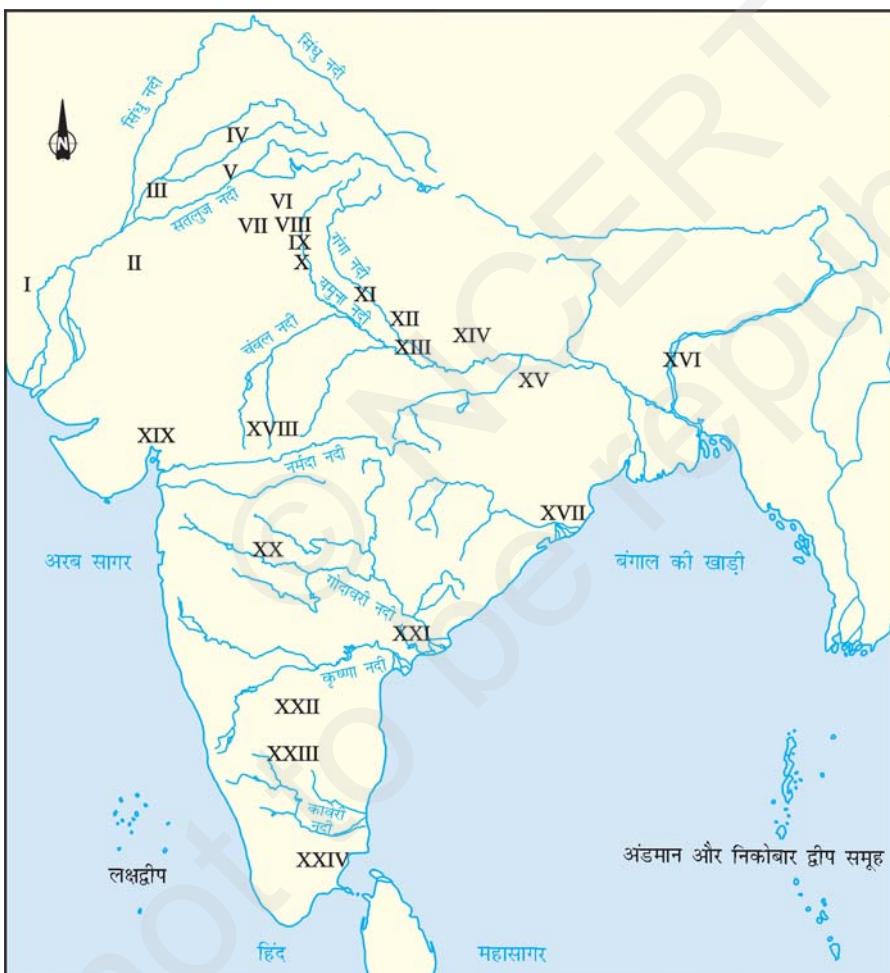
I सिविस्तान	VII सरसुती	XIII कड़ा	XIX गुजरात
II उच्छ	VIII कुहराम	XIV अवध	XX देवगिरी
III मुल्तान	IX हाँसी	XV बिहार	XXI तेलंगाना
IV कलानौर	X दिल्ली	XVI लखनौती	XXII तैलंग
V लाहौर	XI बदायूँ	XVII जाजनगर	XXIII द्वारसमुद्र
VI समाना	XII कन्नौज	XVIII मालवा	XXIV मालाबार

मानचित्र 3
मिस्र के शिहाबुद्दीन उमरी द्वारा रचित मसालिक अल-अबसर फ़ि ममालिक अल-अमसर *के अनुसार मुहम्मद तुग़लक़ के राज्यकाल में दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत आने वाले प्रांत।*

आप क्या समझते हैं, शासक ऐसे दावे क्यों करते थे?

पलायन कर जाते थे। इतिहासकार विजय अभियान के इन दावों को अतिशयोक्तिपूर्ण मानते है। साथ ही वे यह समझने की कोशिश में भी लगे रहते हैं कि शासक लोग इस उपमहाद्वीप के भिन्न-भिन्न भागों पर अपने अधिकार का उल्लेख क्यों करते रहते हैं।

भाषा तथा क्षेत्र

सन् 1318 में कवि अमीर ख़ुसरो ने इस बात पर गौर किया था कि

इस देश के हर क्षेत्र की एक अलग भाषा है : सिंधी, लाहौरी, काश्मीरी, द्वारसमुद्री (दक्षिण कर्नाटक में), तेलंगानी (आंध्र प्रदेश में), गूजरी (गुजरात में), मअबारी (तमिलनाडु में), गौड़ी (बंगाल में)...अवधी (पूर्वी उत्तर प्रदेश में) और हिंदवी (दिल्ली के आस-पास के क्षेत्र में)।"

अमीर ख़ुसरो ने आगे बतलाया है कि इन भाषाओं के विपरीत एक भाषा संस्कृत भी है जो किसी विशेष क्षेत्र की भाषा नहीं है। यह एक प्राचीन भाषा है *"जिसे केवल ब्राह्मण जानते हैं, आम जनता नहीं।"*

अमीर ख़ुसरो द्वारा उल्लिखित भाषाओं की एक सूची बनाइए। और एक सूची उन भाषाओं के नामों की बनाइए जो उनके द्वारा उल्लिखित क्षेत्रों में आज बोली जाती हैं : जो नाम एक से हैं उन्हें रेखांकित कीजिए और जो नाम भिन्न हैं उनके चारों ओर घेरा खींच दीजिए।

? *क्या आपने ध्यान दिया है कि समय के साथ भाषाओं के नाम बदल गए हैं?*

सन् 700 तक कई क्षेत्रों के अपने-अपने भौगोलिक आयाम तय हो चुके थे और उनकी अपनी भाषा तथा सांस्कृतिक विशेषताएँ स्पष्ट हो गई थीं। अध्याय 9 में आपको इनके बारे में और अधिक जानकारी मिलेगी। ये क्षेत्र, विशेष शासक राजवंशों से भी जुड़ गए थे। इन राज्यों के बीच काफ़ी टकराहटें चलती रहती थीं। कभी-कभी चोल, ख़लजी, तुग़लक़ और मुग़ल जैसे राजवंश अनेक क्षेत्रों में फैला एक विशाल साम्राज्य भी खड़ा कर लेते थे। ये सभी साम्राज्य समान रूप से स्थिर या सफल नहीं हो पाते थे। उदाहरण के लिए अध्याय 3 और अध्याय 4 की तालिका 1 की तुलना कीजिए। ख़लजी और मुग़ल वंश के शासन कितनी-कितनी अवधि तक चले?

अठारहवीं सदी में मुग़ल वंश पतन के ढलान पर था। फलस्वरूप क्षेत्रीय राज्य फिर से उभरने लगे (अध्याय 10)। लेकिन वर्षों से जो सर्वक्षेत्रीय साम्राज्यों का शासन चल रहा था उससे क्षेत्रों की प्रकृति बदल गई थी। उन पर कई छोटे-बड़े राज्यों का शासन चलता रहा था और उन राज्यों की बहुत-सी बातें इस उपमहाद्वीप के अधिकतर भाग पर फैले इन क्षेत्रों को विरासत में मिली थीं। इस तथ्य का पता हमें उन कई परंपराओं से लगता है जो इन क्षेत्रों में उभरी थीं। इन परंपराओं में कुछ एक-दूसरी से भिन्न और कुछ एक समान हैं। ऐसी परंपराएँ हमें प्रशासन, अर्थव्यवस्था के प्रबंधन, उच्च संस्कृति तथा भाषा के संदर्भ में मिलती हैं। सन् 700 से लेकर 1750 के बीच के हज़ार वर्षों में इन विभिन्न क्षेत्रों की प्रकृति एक-दूसरे से कटकर अलग-अलग नहीं पनपी थीं। हालाँकि उनके चरित्र की अपनी विशिष्टताएँ बनी रही थीं, मगर समन्वय की सर्वक्षेत्रीय ताकतों का प्रभाव भी उन पर पड़ा था।

?

पता लगाइए कि क्या आपका राज्य कभी इन सर्वक्षेत्रीय साम्राज्यों का हिस्सा रहा था? यदि रहा था, तो कितने समय तक?

पुराने और नए धर्म

इतिहास के जिन हज़ार वर्षों की पड़ताल हम कर रहे हैं, इनके दौरान धार्मिक परंपराओं में कई बड़े परिवर्तन आए। दैविक तत्त्व में लोगों की आस्था कभी-कभी बिल्कुल ही वैयक्तिक स्तर पर होती थी मगर आम तौर पर इस आस्था का स्वरूप सामूहिक होता था। किसी दैविक तत्त्व में सामूहिक आस्था, यानि धर्म, प्राय: स्थानीय समुदायों के सामाजिक और आर्थिक संगठन से संबंधित होती थी। जैसे-जैसे इन समुदायों का सामाजिक संसार बदलता गया वैसे ही इनकी आस्थाओं में भी परिवर्तन आता गया।

?

क्या आपको संस्कृत, ज्ञान एवं ब्राह्मणों के बारे में अमीर ख़ुसरो की टिप्पणियाँ याद हैं?

आज हम जिसे हिंदू धर्म कहते हैं, उसमें भी इसी युग में महत्त्वपूर्ण बदलाव आए। इन परिवर्तनों में से कुछ थे—नए देवी-देवताओं की पूजा, राजाओं द्वारा मंदिरों का निर्माण और समाज में पुरोहितों के रूप में ब्राह्मणों का बढ़ता महत्त्व तथा बढ़ती सत्ता आदि।

संस्कृत ग्रंथों के ज्ञान के कारण समाज में ब्राह्मणों का बड़ा आदर होता था। इनके **संरक्षक** थे, नए-नए शासक जो स्वयं प्रतिष्ठा की चाह में थे। इन संरक्षकों का समर्थन होने के कारण समाज में इनका दबदबा और भी बढ़ गया था।

संरक्षक
कोई प्रभावशाली, धनी व्यक्ति जो किसी कलाकार, शिल्पकार विद्वान या अभिजात जैसे किसी अन्य व्यक्ति को मदद या सहारा दे।

इस युग में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भक्ति की अवधारणा के रूप में आया। इसमें ईश्वर की कल्पना एक ऐसे प्रेमल ईष्ट देवी–देवता के रूप में की गई थी जिस तक पुजारियों के विशद कर्मकांड के बिना ही भक्त स्वयं पहुँच सकें। इस विषय में, और साथ ही दूसरी परंपराओं के बारे में आपको अध्याय 8 में जानकारी मिलेगी।

यही वह युग था जिसमें इस उपमहाद्वीप में नए–नए धर्मों का भी आगमन हुआ। कुरान शरीफ़ का संदेश भारत में पहले–पहल सातवीं सदी में व्यापारियों और आप्रवासियों के ज़रिए पहुँचा। मुसलमान, क़ुरान शरीफ़ को अपना धर्मग्रंथ मानते हैं, केवल एक ईश्वर–अल्लाह–की सत्ता को स्वीकार करते हैं जिसका प्रेम, करुणा और उदारता अपने में आस्था रखने वाले हर व्यक्ति को गले लगाता है चाहे उस व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि कुछ भी रही हो।

कई शासक इस्लाम और इसके विद्वान धर्मशास्त्रियों और न्याय–शास्त्रियों अर्थात् उलेमा को संरक्षण देते थे। हिंदू धर्म की ही भाँति इस्लाम के अनुयायी भी अपने धर्म की अलग–अलग तरह से व्याख्या करते थे। मुसलमानों में कुछ शिया थे जो पैगंबर साहब के दामाद अली को मुसलमानों का विधिसम्मत नेता मानते थे, और कुछ सुन्नी थे जो खलीफ़ाओं के प्रभुत्व को स्वीकार करते थे। इस्लाम के आरंभिक दौर में इस धर्म का नेतृत्व करने वाले खलीफ़ा कहलाते थे और आगे भी इनकी परंपरा चलती रही। इस्लामी न्याय सिद्धांत (विशेषकर भारत में हनफ़ी और शफ़ी ऐसे सिद्धांत हैं) की विभिन्न परंपराओं में भी कई महत्त्वपूर्ण अंतर रहे हैं। ऐसे ही धर्म–सिद्धांतों तथा रहस्यवादी विचारों को लेकर विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं।

समय और इतिहास के कालखंडों पर विचार

इतिहासकार समय को केवल घड़ी या कैलेंडर की तरह नहीं देखते यानी कि केवल घंटों, दिन या वर्षों के बीतने के रूप में ही नहीं देखते हैं। उनका नज़रिया यह है कि समय सामाजिक और आर्थिक संगठन में आने वाले परिवर्तनों को झलकाता है, यह दिखलाता है कि विचारों और विश्वासों में कितना स्थायित्व रहा है और कितना परिवर्तन आया है। यदि अतीत को समान विशेषता रखनेवाले कुछ बड़े–बड़े हिस्सों–युगों या कालों–में बाँट दिया जाए तो समय का अध्ययन कुछ आसान हो जाता है।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में अंग्रेज़ इतिहासकारों ने भारत के इतिहास को तीन युगों में बाँटा था: 'हिंदू', 'मुसलिम' और 'ब्रिटिश'। यह विभाजन इस

विचार पर आधारित था कि शासकों का धर्म ही एकमात्र महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक परिवर्तन होता है और अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति में और कोई भी महत्त्वपूर्ण बदलाव नहीं आता। इस दृष्टिकोण में इस उपमहाद्वीप की अपार विविधता की भी उपेक्षा हो जाती थी।

इस काल विभाजन को आज बहुत कम इतिहासकार ही स्वीकार करते हैं। अधिकतर इतिहासकार आर्थिक तथा सामाजिक कारकों के आधार पर ही अतीत के विभिन्न कालखंडों की विशेषताएँ तय करते हैं। पिछले साल आपने जो इतिहास पढ़े थे उसमें प्राचीन समाजों के कई प्रकारों का समावेश था– जैसे शिकारी–संग्राहक, प्रारंभिक दौर के कृषिकर्मी, शहरों और गाँवों के निवासी और प्रारंभिक दौर के राज्य और साम्राज्य। इस साल आप जो इतिहास पढ़ेंगे उसे प्राय: मध्यकालीन इतिहास कहा जाता है। इसमें आपको कृषक समाजों के विस्तार, क्षेत्रीय और साम्राज्यिक राज्यों के उदय, कभी–कभी तो ग्रामवासियों और वनवासियों की कीमत पर, प्रधान धर्मों के रूप में हिंदू धर्म, इस्लाम धर्म के विकास और यूरोप से व्यापारी कंपनियों के आगमन के बारे में और विस्तार से जानकारी मिलेगी।

भारत के इतिहास के ये हज़ार साल अनेक बदलावों के साक्षी रहे हैं। आखिर, सोलहवीं और अठारहवीं शताब्दियाँ आठवीं या ग्यारहवीं शताब्दियों से काफ़ी भिन्न थीं। इसलिए इस सारे काल को एक ऐतिहासिक इकाई के रूप में देखना समस्याओं से खाली नहीं है। फिर, 'मध्यकाल' की तुलना प्राय: 'आधुनिक काल' से की जाती है। आधुनिकता के साथ भौतिक उन्नति और बौद्धिक प्रगति का भाव जुड़ा हुआ है। इससे आशय यह निकलता है कि मध्यकाल रूढ़िवादी था और उस दौरान कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं। लेकिन हम जानते हैं कि ऐसा नहीं था।

इन हज़ार वर्षों के दौरान इस उपमहाद्वीप के समाजों में प्राय: परिवर्तन आते रहे और कई क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था तो इतनी समृद्ध हो गई थी कि उसने यूरोप की व्यापारी कंपनियों को भी आकर्षित करना आरंभ कर दिया। इस पुस्तक को पढ़ते समय आप परिवर्तन के चिह्नों तथा यहाँ सक्रिय ऐतिहासिक प्रक्रियाओं पर ध्यान देते चलें। और, जब भी संभव हो, इस पुस्तक में आप जो पढ़ रहे हैं उसकी तुलना आप पिछले वर्ष पढ़ी हुई बातों से करने की कोशिश करें। जहाँ भी संभव हो, यह देखें कि कहाँ बदलाव हुए हैं और कहाँ नहीं, और आज अपने आस–पास की दुनिया पर नज़र डालकर भी यह देखें कि और भी क्या कुछ बदला है या वैसा ही रहा है।

कल्पना करें

आप एक इतिहासकार है। इस अध्याय में उल्लिखित कोई एक विषय–आर्थिक, सामाजिक या राजनैतिक इतिहास–चुनिए और समझाइए कि आपके विचार में उसकी जानकारी हासिल करना क्यों दिलचस्प होगा।

फिर से याद करें

1. अतीत में 'विदेशी' किसे माना जाता था?

2. नीचे उल्लिखित बातें सही हैं या गलत :

   (क) सन् 700 के बाद के काल के संबंध में अभिलेख नहीं मिलते हैं।

   (ख) इस काल के दौरान मराठों ने अपने राजनीतिक महत्त्व की स्थापना की।

   (ग) कृषि-केंद्रित बस्तियों के विस्तार के साथ कभी–कभी वनवासी अपनी ज़मीन से उखाड़ बाहर कर दिए जाते थे।

   (घ) सुलतान ग़यासुद्दीन बलबन असम, मणिपुर तथा कश्मीर का शासक था।

3. रिक्त स्थानों को भरें :

   (क) अभिलेखागारों में ______________ रखे जाते हैं।

   (ख) ______________ चौदहवीं सदी का एक इतिहासकार था।

   (ग) ________, ________, ________, ________ और ________ इस उपमहाद्वीप में इस काल के दौरान लाई गई कुछ नई फसलें हैं।

4. इस काल में हुए कुछ प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों की तालिका दें।

_बीज शब्द_

पांडुलिपि

जाति

क्षेत्र

काल–विभाजन

5. इस काल के दौरान हुए कुछ मुख्य धार्मिक परिवर्तनों की जानकारी दें।

आइए समझें

6. पिछली कई शताब्दियों में 'हिंदुस्तान' शब्द का अर्थ कैसे बदला है?

7. जातियों के मामले कैसे नियंत्रित किए जाते थे?

8. सर्वक्षेत्रीय साम्राज्य से आप क्या समझते हैं?

आइए विचार करें

9. पांडुलिपियों के उपयोग में इतिहासकारों के सामने कौन-कौन सी समस्याएँ आती हैं?

10. इतिहासकार अतीत को कालों या युगों में कैसे विभाजित करते हैं? क्या इस कार्य में उनके सामने कोई कठिनाई आती है?

आइए करके देखें

11. अध्याय में दिए गए मानचित्र 1 अथवा मानचित्र 2 की तुलना उपमहाद्वीप के आज के मानचित्र से करें। तुलना करते हुए दोनों के बीच जितनी भी समानताएँ और असमानताएँ मिलती है, उनकी सूची बनाइए।

12. पता लगाइए कि आपके गाँव या शहर में अभिलेख (रिकॉर्ड) कहाँ रखे जाते हैं। इन अभिलेखों को कौन तैयार करता है? क्या आपके यहाँ कोई अभिलेखागार है? उसकी देखभाल कौन करता है? वहाँ किस तरह के दस्तावेज़ संग्रहित हैं? उनका उपयोग कौन लोग करते हैं?

2 नए राजा और उनके राज्य

सातवीं शताब्दी के बाद कई राजवंशों का उदय हुआ। मानचित्र 1 में उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में सातवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच शासन करनेवाले प्रमुख राजवंशों को दिखलाया गया है।

मानचित्र 1
सातवीं-बारहवीं शताब्दियों के प्रमुख राज्य

मानचित्र में गुर्जर-प्रतिहार, राष्ट्रकूट, पाल, चोल और चाहमानों (चौहानों) के स्थान का निर्धारण कीजिए। क्या आप आज के उन राज्यों की पहचान कर सकते हैं, जिन पर उनका नियंत्रण था?
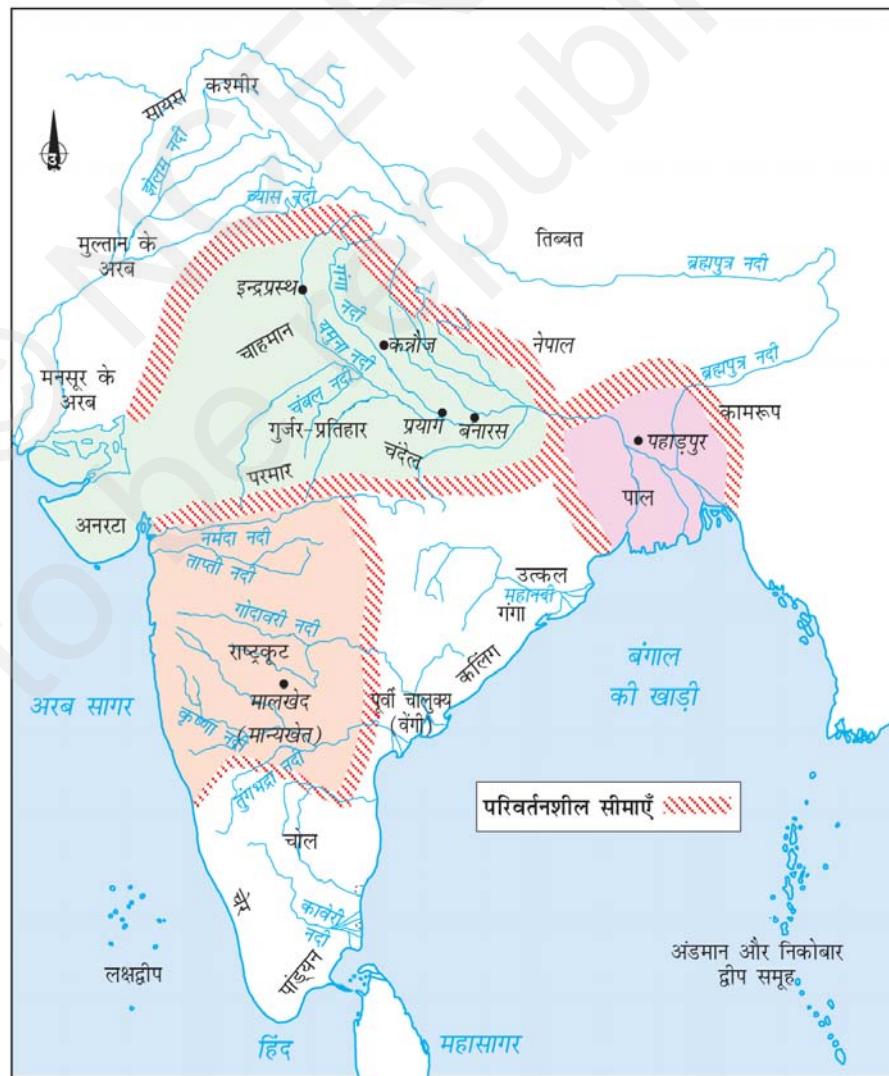
नए राजवंशों का उदय

सातवीं सदी आते-आते उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में बड़े भूस्वामी और योद्धा-सरदार अस्तित्व में आ चुके थे। राजा लोग प्रायः उन्हें अपने मातहत या सामंत के रूप में मान्यता देते थे। उनसे उम्मीद की जाती थी कि वे राजा या स्वामी के लिए उपहार लाएँ, उनके दरबार में हाज़िरी लगाएँ और उन्हें सैन्य सहायता प्रदान करें। अधिक सत्ता और संपदा हासिल करने पर सामंत अपने-आप को महासामंत, महामंडलेश्वर (पूरे मंडल का महान स्वामी) इत्यादि घोषित कर देते थे। कभी-कभी वे अपने स्वामी के आधिपत्य से स्वतंत्र हो जाने का दावा भी करते थे।

चित्र 1
एलोरा की गुफा 15 का भित्तिचित्र, जिसमें विष्णु को नरसिंह अर्थात् पुरुष-सिंह के रूप में दिखलाया गया है। यह राष्ट्रकूट काल की कृति है।

इस तरह का एक उदाहरण दक्कन में राष्ट्रकूटों का था। शुरुआत में वे कर्नाटक के चालुक्य राजाओं के अधीनस्थ थे। आठवीं सदी के मध्य में एक राष्ट्रकूट प्रधान दंतीदुर्ग ने अपने चालुक्य स्वामी की अधीनता से इंकार कर दिया, उसे हराया और हिरण्यगर्भ (शाब्दिक अर्थ - सोने का गर्भ) नामक एक अनुष्ठान किया। जब यह अनुष्ठान ब्राह्मणों की सहायता से संपन्न किया जाता था, तो यह माना जाता था कि इससे याजक, जन्मना क्षत्रिय न होते हुए भी क्षत्रिय के रूप में दुबारा क्षत्रियत्व प्राप्त कर लेगा।

कुछ अन्य उदाहरणों में उद्यमी परिवारों के पुरुषों ने अपनी राजशाही कायम करने के लिए सैन्य-कौशल का इस्तेमाल किया। मिसाल के तौर पर, कदंब मयूरशर्मण और गुर्जर-प्रतिहार हरिचंद्र ब्राह्मण थे, जिन्होंने अपने परंपरागत पेशे को छोड़कर शस्त्र को अपना लिया और क्रमशः कर्नाटक और राजस्थान में अपने राज्य सफलतापूर्वक स्थापित किए।

क्या आपके विचार में उस दौर में एक शासक बनने के लिए क्षत्रिय के रूप में पैदा होना महत्त्वपूर्ण था?

राज्यों में प्रशासन

इन नए राजाओं में से कइयों ने महाराजाधिराज (राजाओं के राजा), त्रिभुवन-चक्रवर्तिन (तीन भुवनों का स्वामी) और इसी तरह की अन्य भारी-भरकम उपाधियाँ धारण कीं। लेकिन, इस तरह के दावों के बावजूद, वे अपने सामंतों और साथ-ही-साथ किसान, व्यापारी तथा ब्राह्मणों के संगठनों के साथ अपनी सत्ता की साझेदारी करते थे।

इन सभी राज्यों में उत्पादकों अर्थात् किसानों, पशुपालकों, कारीगरों से संसाधन इकट्ठे किए जाते थे। इनको अकसर अपने उत्पादों का एक हिस्सा त्यागने के लिए मनाया या बाध्य किया जाता था। कभी-कभी इस हिस्से को 'लगान' मानकर वसूला जाता था क्योंकि प्राप्त करने वाला भूस्वामी होने का दावा करता था। राजस्व व्यापारियों से भी लिया जाता था।

चार सौ कर !

तमिलनाडु में शासन करनेवाले चोल वंश के अभिलेखों में विभिन्न किस्म के करों के लिए 400 से ज़्यादा सूचक शब्द मिलते हैं। सबसे अधिक उल्लिखित कर हैं *वेट्टी*, जो नकद की बजाए जबरन श्रम के रूप में लिया जाता था, यानी जबरन श्रम और *कदमाई* यानी कि भू-राजस्व थे। मकान पर छाजन डालने पर लगने वाला कर, खजूर या ताड़ के पेड़ पर चढ़ने के लिए सीढ़ी के इस्तेमाल पर लगने वाला कर, पारिवारिक संपत्ति का उत्तराधिकार हासिल करने के लिए लगने वाले कर, इत्यादि का भी उल्लेख मिलता है।

क्या आज इनमें से कोई कर वसूले जाते हैं।

ये संसाधन राजा की व्यवस्था का वित्तीय आधार बनते थे, साथ ही मंदिरों और दुर्गों के निर्माण में भी इस्तेमाल होते थे। संसाधन उन युद्धों को लड़ने में भी इस्तेमाल होते थे, जिनसे लूट की शक्ल में धन मिलने की तथा ज़मीन और व्यापारिक मार्गों के प्रयोग की संभावनाएँ बनती थीं।

?
प्रशासन का यह रूप आज की व्यवस्था से किन मायनों में भिन्न था।

राजस्व-वसूली के लिए पदाधिकारियों की नियुक्ति सामान्यत: प्रभावशाली परिवारों के बीच से ही की जाती थी और प्राय: वंशानुगत होती थीं। सेना में भी ऐसा ही होता था। कई बार राजा के निकट संबंधी ही इन ओहदों पर होते थे।

प्रशस्तियाँ और भूमि-अनुदान

प्रशस्तियों में ऐसे ब्यौरे होते हैं, जो शब्दश: सत्य नहीं भी हो सकते। लेकिन ये प्रशस्तियाँ हमें बताती हैं कि शासक खुद को कैसा दर्शाना चाहते थे मिसाल के लिए शूरवीर, विजयी योद्धा के रूप में। ये विद्वान ब्राह्मणों द्वारा रची गई थीं, जो अकसर प्रशासन में मदद करते थे।

नागभट्ट की ‘उपलब्धियाँ’

कई शासकों ने प्रशस्तियों में अपनी उपलब्धियों का बखान किया है। (आपने पिछले साल गुप्त शासक समुद्रगुप्त की प्रशस्ति के बारे में पढ़ा है।)

संस्कृत में लिखी गई, ग्वालियर (मध्य प्रदेश) में पाई गई एक प्रशस्ति में प्रतिहार नरेश, नागभट्ट के कामों का वर्णन इस प्रकार किया गया है :

आंध्र, सैंधव (सिंध), विदर्भ (महाराष्ट्र का एक हिस्सा) और कलिंग (उड़ीसा का एक हिस्सा) के राजा उनके आगे तभी धराशायी हो गए जब वे राजकुमार थे...

उन्होंने कन्नौज के शासक चक्रयुद्ध को विजित किया...

उन्होंने वंग (बंगाल का हिस्सा), अनर्त (गुजरात का हिस्सा), मालवा (मध्य प्रदेश का हिस्सा), किरात (वनवासी), तुरुष्क (तुर्क), वत्स, मत्स्य (दोनों उत्तर भारत के राज्य) राजाओं को पराजित किया...

?

इस अभिलेख में उल्लिखित इलाकों में से कुछ को मानचित्र 1 में ढूँढने की कोशिश करें। दूसरे राजाओं ने भी इसी तरह के दावे किए थे। आपके विचार से ऐसे दावे उन्होंने क्यों किए होंगे?

राजा लोग प्राय: ब्राह्मणों को भूमि अनुदान से पुरस्कृत करते थे। ये ताम्र पत्रों पर अभिलिखित होते थे, जो भूमि पाने वाले को दिए जाते थे।

चित्र 2

यह थोड़ा संस्कृत और थोड़ा तमिल में लिखा हुआ ताम्रपत्रों का एक संग्रह है, जिसमें नौवीं सदी में एक शासक के द्वारा दिए गए भूमि अनुदान का उल्लेख है। जिन कड़ियों से ये पत्र जुड़े हैं, उन पर राजसी मुहर लगी है, जो यह बतलाने के लिए है कि यह एक प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

भूमि के साथ क्या-क्या दिया जाता था?

यह चोलों के द्वारा दिए गए एक भूमि अनुदान के तमिल भाग का एक अंश है :

हमने मिट्टी की मेड़ें बनाकर, साथ ही काँटेदार झाड़ियाँ लगाकर भूमि की सीमाओं को चिह्नित कर दिया है। इस भूमि पर ये चीज़ें हैं : फलदार वृक्ष, पानी, भूमि, बगीचे और फलोद्यान, पेड़, कुएँ, खुली जगह, चरागाह, एक गाँव, बाँबी, चबूतरें, नहरें, खाइयाँ, नदियाँ, दलदली ज़मीन, हौज़, अन्नागार, मछलियों के तालाब, मधुमक्खियों के छत्ते और गहरी झीलें।

जिसे यह भूमि मिलती है, वह इससे कर वसूली कर सकता है। वह न्यायाधिकारियों द्वारा जुर्माने के तौर पर लगाए गए कर वसूल सकता है, पान के पत्तों पर लगने वाला कर, बुने हुए कपड़ों पर लगने वाला कर, साथ ही साथ वाहनों पर लगनेवाला कर वसूल सकता है। वह पकी ईंटों के बने ऊपरी माले पर बड़े कमरे बनवा सकता है, बड़े और छोटे कुएँ खुदवा सकता है, पेड़ और काँटेदार झाड़ियाँ लगवा सकता है, ज़रूरी हो तो सिंचाई के लिए नहर बनवा सकता है। उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पानी बरबाद न हो और तटबंधों का निर्माण हो।

? *लेख में सिंचाई के जितने संभव स्रोतों का उल्लेख है, उनकी सूची बनाइए और विचार-विमर्श कीजिए कि इनका कैसे इस्तेमाल होता होगा।*

बारहवीं शताब्दी में एक बृहत् संस्कृत काव्य भी रचा गया, जिसमें कश्मीर पर शासन करने वाले राजाओं का इतिहास दर्ज है। इसे कल्हण नामक एक रचनाकार द्वारा रचा गया। कल्हण ने अपना वृत्तांत लिखने के लिए शिलालेखों, दस्तावेज़ों, प्रत्यक्षदर्शियों के वर्णनों और पहले के इतिहासों समेत अनेक तरह के स्रोतों का इस्तेमाल किया। प्रशस्तियों के लेखकों से भिन्न वह अकसर शासकों और उनकी नीतियों के बारे में आलोचनात्मक रुख दिखलाता है, इसलिए बारहवीं सदी के लिए यह असाधारण ग्रंथ था।

धन के लिए युद्ध

आपने यह गौर किया होगा कि इनमें से प्रत्येक शासक राजवंश का आधार कोई क्षेत्र-विशेष था। वे दूसरे क्षेत्रों पर भी नियंत्रण करने का प्रयास करते थे।

एक विशेष रूप से वांछनीय क्षेत्र था–गंगा घाटी में कन्नौज नगर। गुर्जर-प्रतिहार, राष्ट्रकूट और पाल वंशों के शासक सदियों तक कन्नौज के ऊपर नियंत्रण को लेकर आपस में लड़ते रहे। चूँकि इस लंबी चली लड़ाई में तीन पक्ष थे, इसलिए इतिहासकारों ने प्राय: इसकी चर्चा 'त्रिपक्षीय संघर्ष' के रूप में की है।

मानचित्र 1 को देखें और वे कारण बताइए, जिनके चलते ये शासक कन्नौज और गंगा घाटी के ऊपर नियंत्रण चाहते थे।

जैसा कि हम देखेंगे (पृष्ठ 62-66), शासकों ने बड़े मंदिरों का निर्माण करवा कर भी अपनी सत्ता और संसाधनों का प्रदर्शन करने का प्रयास किया। इसलिए जब वे एक-दूसरे के राज्यों पर आक्रमण करते थे, तो मंदिरों को भी अपना निशाना बनाते थे, जो कभी-कभी बहुत अधिक संपन्न होते थे। आप अध्याय 5 में इसके बारे में और पढ़ेंगे।

सुलतान
अरबी भाषा का शब्द है, जिसका मतलब है, शासक

अफ़गानिस्तान के ग़ज़नी का **सुलतान** महमूद, ऐसे शासकों में से सबसे प्रसिद्ध है। उसने 997 से 1030 तक शासन किया और अपने नियंत्रण का विस्तार मध्य एशिया के भागों, ईरान और उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी हिस्से तक किया। वह लगभग हर साल उपमहाद्वीप पर हमला करता था। उसका निशाना थे–संपन्न मंदिर, जिनमें गुजरात का सोमनाथ मंदिर भी शामिल था। महमूद जो धन उठा ले गया, उसका बहुत बड़ा हिस्सा ग़ज़नी में एक वैभवशाली राजधानी के निर्माण में खर्च हुआ।

सुलतान महमूद अपने द्वारा जीते गए लोगों के बारे में भी कई बातें जानना चाहता था और उसने अल-बेरूनी नामक एक विद्वान को इस उपमहाद्वीप का लेखा-जोखा लिखने का काम सौंपा। अरबी में लिखी गई उसकी कृति, *किताब अल-हिन्द*, आज भी इतिहासकारों के लिए एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। अल-बेरूनी ने इसे तैयार करने के लिए संस्कृत के विद्वानों से परामर्श किया।

मानचित्र 1 को दोबारा देखिए और विचार-विमर्श कीजिए कि चाहमानों ने अपने इलाके का विस्तार क्यों करना चाहा होगा?

युद्ध करने वाले दूसरे राजाओं में चाहमान भी थे, जो बाद में चौहान के रूप में जाने गए। वे दिल्ली और अजमेर के आस-पास के क्षेत्र पर शासन करते थे। उन्होंने पश्चिम और पूर्व की ओर अपने नियंत्रण-क्षेत्र का विस्तार करना चाहा, जहाँ उन्हें गुजरात के चालुक्यों और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गहड़वालों से टक्कर लेनी पड़ी। चाहमानों का सबसे प्रसिद्ध शासक था–पृथ्वीराज तृतीय (1168-1192), जिसने सुलतान मुहम्मद गोरी नामक अफ़गान शासक को 1191 में हराया, लेकिन दूसरे ही साल 1192 में उसके हाथों हार गया।

चोल राज्य – नज़दीक से एक नज़र
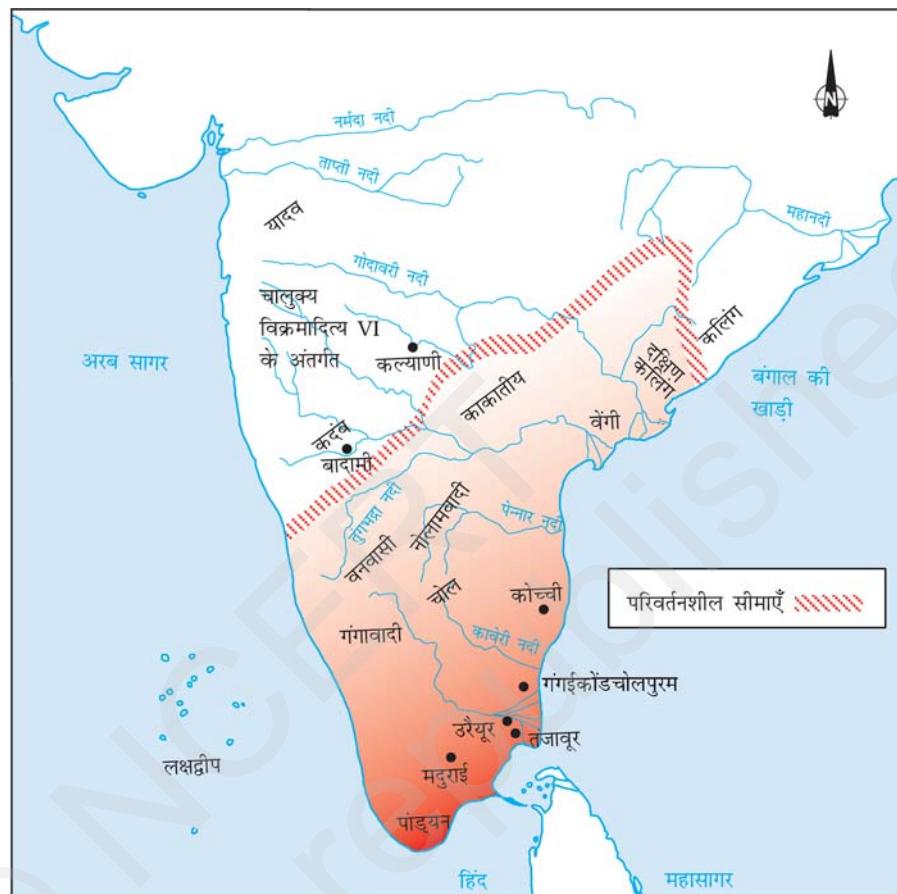
मानचित्र 2
चोल राज्य और उसके पड़ोसी

उरैयूर से तंजावूर तक

चोल वंश सत्ता में कैसे आया? कावेरी डेल्टा में मुट्टरियार नाम से प्रसिद्ध एक छोटे-से मुखिया परिवार की सत्ता थी। वे कांचीपुरम के पल्लव राजाओं के मातहत थे। उरइयार के चोलवंशीय प्राचीन मुखिया परिवार के विजयालय ने नौवीं सदी के मध्य में मुट्टरियारों को हरा कर इस डेल्टा पर कब्ज़ा जमाया। उसने वहाँ तंजावूर शहर और निशुम्भसूदिनी देवी का मंदिर बनवाया।

विजयालय के उत्तराधिकारियों ने पड़ोसी इलाकों को जीता और उसका राज्य अपने क्षेत्रफल तथा शक्ति, दोनों रूपों में बढ़ता गया। दक्षिण और उत्तर के पांड्यन और पल्लव के इलाके इस राज्य का हिस्सा बना लिए गए। राजराज प्रथम, जो सबसे शक्तिशाली चोल शासक माना जाता है, 985 में राजा बना और उसी ने इनमें से ज़्यादातर क्षेत्रों पर अपने नियंत्रण का विस्तार किया। उसने साम्राज्य के प्रशासन का भी पुनर्गठन किया। राजराज के पुत्र

राजेंद्र प्रथम ने उसकी नीतियों को जारी रखा और उसने गंगा घाटी, श्री लंका तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों पर हमला भी किया। इन अभियानों के लिए उसने एक जलसेना भी बनाई।

भव्य मंदिर और कांस्य मूर्तिकला

राजराज और राजेंद्र प्रथम द्वारा बनवाए गए तंजावूर और गंगईकोंडचोलपुरम के बड़े मंदिर स्थापत्य और मूर्तिकला की दृष्टि से एक चमत्कार हैं।

चोल मंदिर अकसर अपने आस-पास विकसित होने वाली बस्तियों के केंद्र बन गए। ये शिल्प-उत्पादन के केंद्र थे। ये मंदिर शासकों और अन्य लोगों द्वारा दी गई भूमि से भी संपन्न हो गए थे। इस भूमि की उपज उन सारे विशेषज्ञों का निर्वाह करने में खर्च होती थी, जो मंदिर के आस-पास रहते और उसके लिए काम करते थे-पुरोहित, मालाकार, बावर्ची, मेहतर,

चित्र 3
गंगईकोंडचोलपुरम का मंदिर
छत जिस तरह से क्रमशः पतली होती गई है, उस पर गौर करें। बाहरी दीवारों को सजाने के लिए पत्थर की जो प्रतिमाएँ अलंकृत की गई हैं, उन्हें भी देखिए।

संगीतकार, नर्तक, इत्यादि। दूसरे शब्दों में, मंदिर सिर्फ़ पूजा-आराधना के स्थान नहीं थे–वे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के केंद्र भी थे। मंदिर के साथ जुड़े हुए शिल्पों में सबसे विशिष्ट था–कांस्य प्रतिमाएँ बनाने का काम। चोल कांस्य प्रतिमाएँ संसार की सबसे उत्कृष्ट कांस्य प्रतिमाओं में गिनी जाती हैं। ज़्यादातर प्रतिमाएँ तो देवी-देवताओं की ही होती थीं, लेकिन कुछ प्रतिमाएँ भक्तों की भी बनाई गई थीं।

कृषि और सिंचाई

चोलों की कई उपलब्धियाँ कृषि में हुए नए विकासों के माध्यम से संभव हुईं। मानचित्र 2 देखिए। गौर कीजिए कि कावेरी नदी बंगाल की खाड़ी में मिलने से पहले कई छोटी-छोटी शाखाओं में बँट जाती है। ये शाखाएँ बार-बार पानी उलीचती हैं, जिससे किनारों पर उपजाऊ मिट्टी जमा होती रहती है। शाखाओं का पानी, कृषि, विशेषतः चावल की खेती के लिए आवश्यक आर्द्रता भी मुहैया कराता है।

हालाँकि तमिलनाडु के दूसरे हिस्सों में कृषि पहले ही विकसित हो चुकी थी, पर पाँचवी या छठी सदी में आकर ही इस इलाके में बड़े पैमाने पर खेती शुरू हो पाई। कुछ इलाकों में जंगलों को साफ़ किया जाना था और कुछ दूसरे इलाक़ों में ज़मीन को समतल किया जाना था। डेल्टा क्षेत्रों में बाढ़ को रोकने के लिए तटबंध बनाए जाने थे और पानी को खेतों तक ले जाने के लिए नहरों का निर्माण होना था। कई क्षेत्रों में एक साल में दो फ़सलें उगाई जाती थीं।

चित्र 4
एक चोल कांस्य प्रतिमा। कितनी सावधानी के साथ उसे अलंकृत किया गया है, इस पर गौर कीजिए। ऐसी प्रतिमाएँ किस तरह बनाई जाती थीं, यह जानने के लिए अध्याय 6 देखिए।

चित्र 5
नवीं शताब्दी तमिलनाडु का एक जलद्वार। हौज़ से नदी की शाखाओं में पानी के प्रवाह को इसके ज़रिए नियंत्रित किया जाता था। इस पानी से खेत सींचे जाते थे।

कई जगहों पर फ़सलों की सिंचाई कृत्रिम रूप से करना ज़रूरी था। सिंचाई के लिए कई पद्धतियाँ अपनाई जाती थीं। कुछ इलाकों में कुएँ खोदे गए। कुछ अन्य जगहों में बारिश के पानी को इकट्ठा करने के लिए विशाल सरोवर बनाए गए। स्मरण रहे कि सिंचाई के काम में योजना की ज़रूरत होती है, जैसे–श्रम और संसाधनों को व्यवस्थित करना, इन कामों की देख-रेख करना और यह तय करना कि पानी का बँटवारा कैसे किया जाए। ज़्यादातर नए शासकों, साथ-ही-साथ गाँवों में रहनेवाले लोगों ने इन गतिविधियों में सक्रिय रूप से दिलचस्पी दिखलाई।

साम्राज्य का प्रशासन

प्रशासन किस प्रकार संगठित था? किसानों की बस्तियाँ, जो 'उर' कहलाती थीं, सिंचित खेती के साथ बहुत समृद्ध हो गई थीं। इस तरह के गाँवों के समूह को 'नाडु' कहा जाता था। ग्राम परिषद् और नाडु, न्याय करने और कर वसूलने जैसे कई प्रशासकीय कार्य करते थे।

वेल्लाल जाति के धनी किसानों को केंद्रीय चोल सरकार की देख-रेख में 'नाडु' के काम-काज में अच्छा-ख़ासा नियंत्रण हासिल था। उनमें से कई धनी भूस्वामियों को चोल राजाओं ने सम्मान के रूप में 'मुवेंदवेलन' (तीन राजाओं को अपनी सेवाएँ प्रदान करने वाला वेलन या किसान), 'अरइयार' (प्रधान) जैसी उपाधियाँ दीं और उन्हें केंद्र में महत्त्वपूर्ण राजकीय पद सौंपे।

भूमि के प्रकार

चोल अभिलेखों में भूमि की विभिन्न कोटियों का उल्लेख मिलता है।

वेल्लनवगाई
गैर-ब्राह्मण किसान स्वामी की भूमि

ब्रह्मदेय
ब्राह्मणों को उपहार में दी गई भूमि

शालाभोग
किसी विद्यालय के रखरखाव के लिए भूमि

देवदान, तिरुनमट्टुक्कनी
मंदिर को उपहार में दी गई भूमि

पल्लिच्चंदम
जैन संस्थानों को दान दी गई भूमि

हमने देखा है कि ब्राह्मणों को समय-समय पर भूमि-अनुदान या ब्रह्मदेय प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप कावेरी घाटी और दक्षिण भारत के दूसरे हिस्सों में ढेरों ब्राह्मण बस्तियाँ अस्तित्व में आईं।

प्रत्येक ब्रह्मदेय की देख-रेख प्रमुख ब्राह्मण भूस्वामियों की एक सभा द्वारा की जाती थी। ये सभाएँ बहुत कुशलतापूर्वक काम करती थीं। इनके निर्णय, शिलालेखों में प्राय: मंदिरों की पत्थर की दीवारों पर, ब्यौरेवार दर्ज़ किए जाते थे। 'नगरम' के नाम से ज्ञात व्यापारियों के संघ भी अकसर शहरों में प्रशासनिक कार्य संपादित करते थे।

तमिलनाडु के चिंगलपुट ज़िले के उत्तरमेरुर से प्राप्त अभिलेखों में इस बात का सविस्तार वर्णन है कि ब्राह्मणों की सभा का संगठन कैसा था। सिंचाई के कामकाज, बाग-बगीचों, मंदिरों इत्यादि की देख-रेख के लिए सभा में विभिन्न समितियाँ होती थीं। इनमें सदस्यता के लिए जो लोग योग्य होते थे, उनके नाम तालपत्र के छोटे टिकटों पर लिखे जाते थे और मिट्टी के बर्तन में रख दिए जाते थे और किसी छोटे लड़के को हर समिति के लिए एक के बाद एक टिकट निकालने के लिए कहा जाता था।

अभिलेख और लिखित सामग्री

उत्तरमेरुर अभिलेख के अनुसार सभा की सदस्यता:

सभा की सदस्यता के लिए इच्छुक लोगों को ऐसी भूमि का स्वामी होना चाहिए, जहाँ से भू-राजस्व वसूला जाता है।

उनके पास अपना घर होना चाहिए।

उनकी उम्र 35 से 70 के बीच होनी चाहिए।

उन्हें वेदों का ज्ञान होना चाहिए।

उन्हें प्रशासनिक मामलों की अच्छी जानकारी होनी चाहिए और ईमानदार होना चाहिए।

यदि कोई पिछले तीन सालों में किसी समिति का सदस्य रहा है तो वह किसी और समिति का सदस्य नहीं बन सकता।

जिसने अपने या अपने संबंधियों के खाते जमा नहीं कराए हैं, वह चुनाव नहीं लड़ सकता।

अभिलेखों में राजाओं और शक्तिसंपन्न पुरुषों के बारे में तो जानकारी मिलती है, लेकिन यह जानना खासा मुश्किल है कि साधारण मर्दों और औरतों का जीवन इन राज्यों में कैसा था? बारहवीं शताब्दी की तमिल कृति, *पेरियापूरणम* से एक उद्धरण–

अडनूर की सरहदों पर फूस की पुरानी छाजनों वाली छोटी-छोटी झोंपड़ियों से अँटा पड़ा 'पुलाया' (एक ऐसा समूह, जिसे ब्राह्मण और वेल्लाल प्रतिष्ठित समाज के बाहर मानते थे) लोगों का एक छोटा-सा पुरवा था, जिसमें ओछे किस्म के पेशों में लगे खेतिहर मज़दूर रहते थे। चमड़े की पट्टियों से घिरे हुए झोंपड़ियों के अहातों में छोटे मुर्गे-मुर्गियाँ झुंडों में घूमते रहते थे। गहरे रंग के बच्चे, जो काले लोहे के कंगन पहने हुए थे, छोटे पिल्लों को उठाए उछलते चल रहे थे।... मारूदू पेड़ों की छाया में एक मज़दूरनी ने अपने बच्चे को चमड़े की एक चादर पर सुला दिया। आम के पेड़ भी थे, जिनकी शाखाओं पर नगाड़े लटके हुए थे और नारियल के पेड़ों के नीचे ज़मीन में बने छोटे गड्ढ़ों में छोटे सिरों वाली कुतियाँ पिल्लों को दूध पिलाने के बाद लेटी हुई थीं। लाल कलगी वाले मुर्गों ने पौ फटने से पहले तगड़े पुलैयार (पुलाया का बहुवचन) को दिन के काम पर जाने की हाँक लगाते हुए बाँग दे दी। धान कूटती लहरदार बालोंवाली पुलाया स्त्रियों के गाने की आवाज़ रोज़ाना कांजी वृक्ष की छाया में फैलती थी।...

क्या आपको लगता है कि महिलाएँ इन सभाओं में हिस्सेदारी करती थीं? क्या आप समझते हैं कि समितियों के सदस्यों के चुनाव के लिए लॉटरी का तरीका उपयोगी होता है?

क्या इस पुरवे में कुछ ब्राह्मण थे? जितनी तरह की गतिविधियाँ चल रही थीं, उनका वर्णन करें। आपके ख्याल से अभिलेखों में इन सबका उल्लेख क्यों नहीं किया गया है?

अन्यत्र

तांग वंश के युग का चीन

चीन में तांग राजवंश के तहत एक साम्राज्य स्थापित हुआ, जो लगभग तीन सौ वर्षों तक (सातवीं से दसवीं सदी तक) सत्ता में रहा। इसकी राजधानी शिआन दुनिया के सबसे बड़े नगरों में से एक थी, जहाँ तुर्की, ईरानी, भारतीय, जापानी और कोरियाई आया-जाया करते थे।

तांग साम्राज्य परीक्षा के माध्यम से नियुक्त की गई नौकरशाही द्वारा प्रशासित होता था। इन परीक्षाओं में हर इच्छुक व्यक्ति बैठ सकता था। अधिकारियों के चयन की यह व्यवस्था कुछ बदलावों के साथ 1911 तक कायम रही।

भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलित व्यवस्थाओं से यह व्यवस्था किन मायनों में भिन्न थी?

कल्पना कीजिए

आप एक सभा के चुनाव में मौजूद हैं। जो कुछ आप देख और सुन रहे हैं उसका वर्णन कीजिए।

फिर से याद करें

1. जोड़े बनाओ :

गुर्जर-प्रतिहार	पश्चिमी दक्कन
राष्ट्रकूट	बंगाल
पाल	गुजरात और राजस्थान
चोल	तमिलनाडु

2. 'त्रिपक्षीय संघर्ष' में लगे तीनों पक्ष कौन-कौन से थे?

3. चोल साम्राज्य में सभा की किसी समिति का सदस्य बनने के लिए आवश्यक शर्तें क्या थीं?

4. चाहमानों के नियंत्रण में आनेवाले दो प्रमुख नगर कौन-से थे?

आइए समझें

5. राष्ट्रकूट कैसे शक्तिशाली बने?

6. नये राजवंशों ने स्वीकृति हासिल करने के लिए क्या किया?

7. तमिल क्षेत्र में किस तरह की सिंचाई व्यवस्था का विकास हुआ?

8. चोल मंदिरों के साथ कौन-कौन सी गतिविधियाँ जुड़ी हुई थीं?

आइए विचार करें

9. मानचित्र 1 को दुबारा देखें और तलाश करें कि जिस प्रांत में आप रहते हैं, उसमें कोई पुरानी राजशाहियाँ (राजाओं के राज्य) थीं या नहीं?

10. जिस तरह के पंचायती चुनाव हम आज देखते हैं, उनसे उत्तरमेरुर के 'चुनाव' किस तरह से अलग थे?

आइए करके देखें

11. इस अध्याय में दिखलाए गए मंदिरों से अपने आस-पास के किसी मौजूदा मंदिर की तुलना करें और जो समानताएँ या अंतर आप देख पाते हैं, उन्हें बताएँ।

12. आज के समय में वसूले जाने वाले करों के बारे में और जानकारी हासिल करें। क्या ये नकद के रूप में हैं, वस्तु के रूप में हैं या श्रम सेवाओं के रूप में?

बीज शब्द

सामंत

मंदिर

नाडु

सभा

3 दिल्ली के सुलतान

हमने अध्याय 2 में देखा कि कावेरी डेल्टा जैसे क्षेत्र बड़े राज्यों के केंद्र बन गये थे। क्या आपने गौर किया कि अध्याय 2 में ऐसे किसी राज्य का ज़िक्र नहीं है जिसकी राजधानी दिल्ली रही हो? इसकी वजह यह है कि दिल्ली महत्त्वपूर्ण शहर बारहवीं शताब्दी में ही बना।

तालिका 1 पर नज़र डालिए। पहले पहल तोमर राजपूतों के काल में दिल्ली किस साम्राज्य की राजधानी बनी। बारहवीं सदी के मध्य में तोमरों को अजमेर के चौहानों (जिन्हें चाहमान नाम से भी जाना जाता है) ने परास्त किया। तोमरों और चौहानों के राज्यकाल में ही दिल्ली वाणिज्य का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया। इस शहर में बहुत सारे समृद्धिशाली जैन व्यापारी रहते थे जिन्होंने अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया। यहाँ *देहलीवाल* कहे जाने वाले सिक्के भी ढाले जाते थे जो काफ़ी प्रचलन में थे।

मानचित्र 1
तेरहवीं-चौदहवीं सदी में दिल्ली सल्तनत के कुछ चुने हुए शहर।

तेरहवीं सदी के आरंभ में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई और इसके साथ दिल्ली एक ऐसी राजधानी में बदल गई जिसका नियंत्रण इस उपमहाद्वीप के बहुत बड़े क्षेत्र पर फैला था। तालिका 1 पर फिर से नज़र डालिए और उन पाँच वंशों की पहचान कीजिए जिनसे मिलकर दिल्ली की सल्तनत बनी।

जिस इलाके को हम आज दिल्ली के नाम से जानते हैं, वहाँ इन सुलतानों ने अनेक नगर बसाए। मानचित्र 1 को देखकर देहली-ए कुहना, सीरी और जहाँपनाह को पहचानिए।

तालिका 1

दिल्ली के शासक

राजपूत वंश	
तोमर	आरंभिक बारहवीं शताब्दी–1165
अनंगपाल	1130–1145
चौहान	1165–1192
पृथ्वीराज चौहान	1175–1192
प्रारंभिक तुर्की शासक	**1206–1290**
क़ुत्बउद्दीन ऐबक	1206–1210
शमसुद्दीन इल्तुतमिश	1210–1236
रज़िया	1236–1240
ग़यासुद्दीन बलबन	1266–1287

इल्तुतमिश का मकबरा

अलाई दरवाज़ा
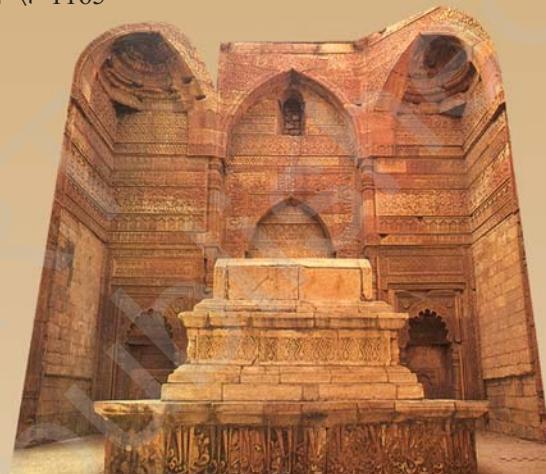
ख़लजी वंश	**1290–1320**
जलालुद्दीन ख़लजी	1290–1296
अलाउद्दीन ख़लजी	1296–1316
तुगलक वंश	**1320–1414**
गयासुद्दीन तुग़लक़	1320–1324
मुहम्मद तुग़लक़	1324–1351
फिरोज़ शाह तुग़लक़	1351–1388
सैयद वंश	**1414–1451**
खिज़्र ख़ान	1414–1421
लोदी वंश	**1451–1526**
बहलोल लोदी	1451–1489

फिरोज़ शाह तुग़लक़ का मकबरा

दिल्ली के सुलतानों के बारे में जानकारी – कैसे?

हालाँकि अभिलेख, सिक्कों और स्थापत्य (भवन निर्माण कला) के माध्यम से काफ़ी सूचना मिलती है, मगर और भी महत्त्वपूर्ण वे 'इतिहास', तारीख (एकवचन) / तवारीख (बहुवचन) हैं जो सुलतानों के शासनकाल में, प्रशासन की भाषा फ़ारसी में लिखे गए थे।
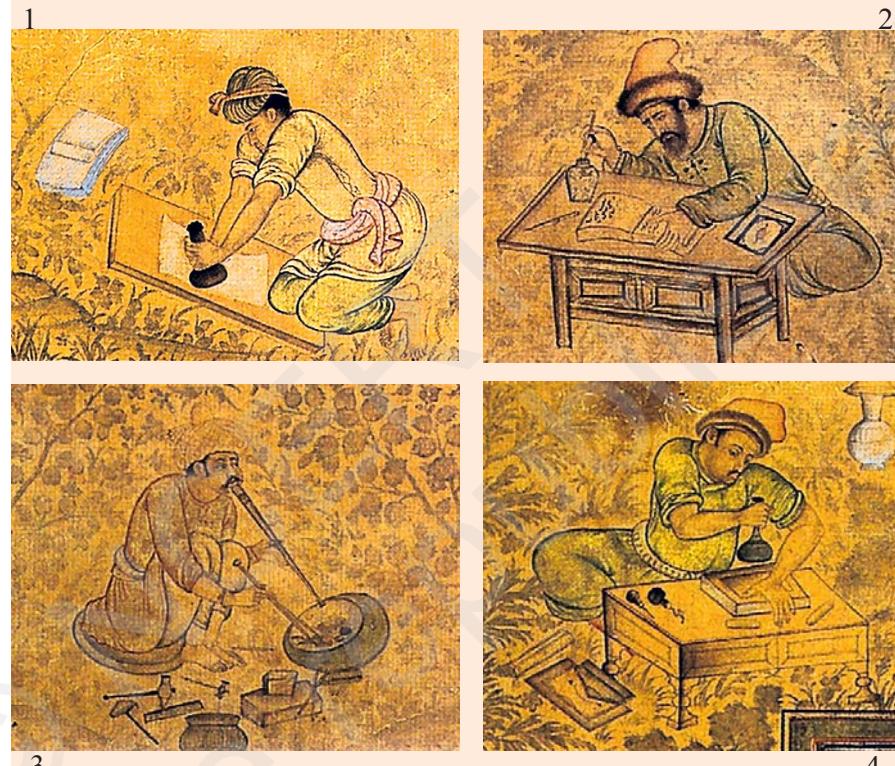
चित्र 1
पांडुलिपि को तैयार करने के चार चरण:
1. कागज़ तैयार करना
2. लेखन-कार्य
3. महत्त्वपूर्ण शब्दों और अनुच्छेदों की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए सोने को पिघला कर उसका प्रयोग
4. जिल्द तैयार करना

तवारीख के लेखक सचिव, प्रशासक, कवि और दरबारियों जैसे सुशिक्षित व्यक्ति होते थे जो घटनाओं का वर्णन भी करते थे और शासकों को प्रशासन संबंधी सलाह भी देते थे। वे न्यायसंगत शासन के महत्त्व पर बल देते थे।

न्याय-चक्र

तेरहवीं सदी के इतिहासकार फ़ख़्र-ए मुदब्बिर ने लिखा था:

राजा का काम सैनिकों के बिना नहीं चल सकता। सैनिक वेतन के बिना नहीं जी सकते। वेतन आता है किसानों से एकत्रित किए गए राजस्व से। मगर किसान भी राजस्व तभी चुका सकेंगे, जब वे खुशहाल और प्रसन्न हों। ऐसा तभी हो सकता है, जब राजा न्याय और ईमानदार प्रशासन को बढ़ावा दे।

?

क्या आपको लगता है कि न्याय-चक्र राजा और प्रजा के बीच के संबंध को समझाने के लिए उपयुक्त शब्द है?

ये कुछ और बातें ध्यान में रखें : (1) तवारीख के लेखक नगरों में (विशेषकर दिल्ली में) रहते थे, गाँव में शायद ही कभी रहते हों। (2) वे अकसर अपने इतिहास सुलतानों के लिए, उनसे ढेर सारे इनाम-इकराम पाने की आशा में लिखा करते थे। (3) ये लेखक अकसर शासकों को **जन्मसिद्ध अधिकार** और **लिंगभेद** पर आधारित 'आदर्श' समाज व्यवस्था बनाए रखने की सलाह देते थे। उनके विचारों से सारे लोग सहमत नहीं होते थे।

सन् 1236 में सुलतान इल्तुतमिश की बेटी रज़िया सिंहासन पर बैठी। उस युग के इतिहासकार मिन्हाज-ए-सिराज ने स्वीकार किया है कि वह अपने सभी भाइयों से अधिक योग्य और सक्षम थी, लेकिन फिर भी वह एक रानी को शासक के रूप में मान्यता नहीं दे पा रहा था। दरबारी जन भी उसके स्वतंत्र रूप से शासन करने की कोशिशों से प्रसन्न नहीं थे। सन् 1240 में उसे सिंहासन से हटा दिया गया।

जन्मसिद्ध अधिकार
जन्म के आधार पर विशेषाधिकार का दावा। उदाहरण के लिए, लोग मानते थे कि कुलीन व्यक्तियों को, कुछ खास परिवारों में जन्म लेने के कारण शासन करने का अधिकार विरासत में मिलता है।

लिंगभेद
स्त्रियों तथा पुरुषों के बीच सामाजिक तथा शरीर-रचना संबंधी अंतर। आमतौर पर यह तर्क दिया जाता है कि ऐसे अंतर के कारण पुरुष स्त्रियों की तुलना में श्रेष्ठ होते हैं।

रज़िया के बारे में मिन्हाज-ए-सिराज के विचार

मिन्हाज-ए-सिराज का सोचना था कि ईश्वर ने जो आदर्श समाज व्यवस्था बनाई है उसके अनुसार स्त्रियों को पुरुषों के अधीन होना चाहिए और रानी का शासन इस व्यवस्था के विरुद्ध जाता था। इसलिए वह पूछता है : "खुदा की रचना के खाते में उसका ब्यौरा चूँकि मर्दों की सूची में नहीं आता, इसलिए इतनी शानदार खूबियों से भी उसे आखिर हासिल क्या हुआ?"

रज़िया ने अपने अभिलेखों और सिक्कों पर अंकित करवाया कि वह सुलतान इल्तुतमिश की बेटी थी। आधुनिक आंध्र प्रदेश के वारंगल क्षेत्र में किसी समय काकतीय वंश का राज्य था। उस वंश की रानी रुद्रम्मा देवी (1262-1289) के व्यवहार से रज़िया का व्यवहार बिलकुल विपरीत था। रुद्रम्मा देवी ने अपने अभिलेखों में अपना नाम पुरुषों जैसा लिखवाकर अपने पुरुष होने का भ्रम पैदा किया था। एक और महिला शासक थी–कश्मीर की रानी दिद्दा (980-1003)। उनका नाम 'दीदी' (बड़ी बहन) से निकला है। ज़ाहिर है प्रजा ने अपनी प्रिय रानी को यह स्नेहभरा संबोधन दिया होगा।

? *मिन्हाज के विचार अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए। क्या आपको लगता है कि रज़िया के विचार भी यही थे? आप के अनुसार, स्त्री के लिए शासक बनना इतना कठिन क्यों था?*

दिल्ली सल्तनत का विस्तार – गैरिसन शहर से साम्राज्य तक

मानचित्र 2
शमसुद्दीन इल्तुतमिश द्वारा जीते गए प्रमुख शहर
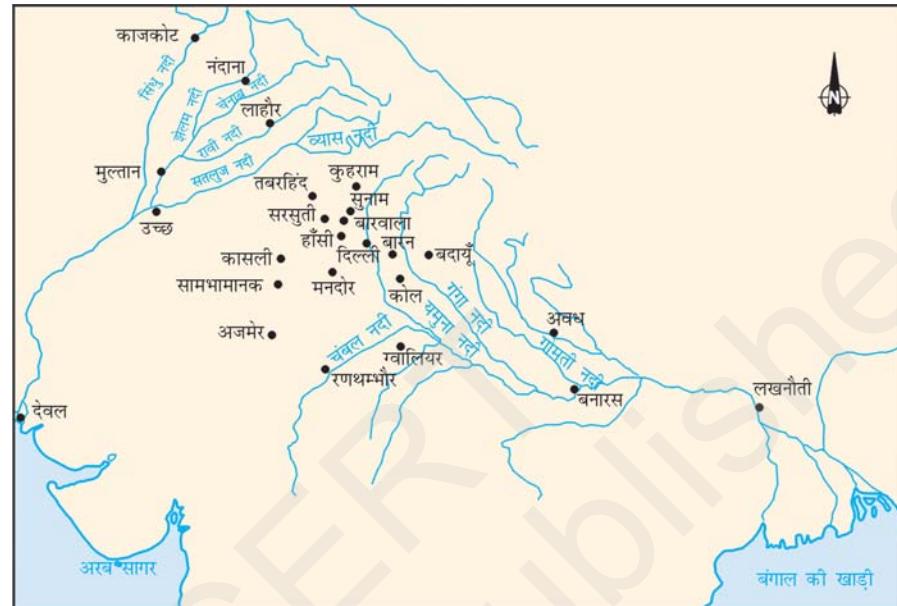
भीतरी प्रदेश
किसी शहर या बंदरगाह के आस-पास के इलाके जो उस शहर के लिए वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति करें।

गैरिसन शहर
किलेबंद बसाव जहाँ सैनिक रहते हैं।

तेरहवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में दिल्ली के सुलतानों का शासन गैरिसनों (रक्षक सैनिकों की टुकड़ियों) के निवास के लिए बने मज़बूत किलेबंद शहरों से परे शायद ही कभी फैला हो। शहरों से संबद्ध, लेकिन उनसे दूर **भीतरी प्रदेशों** पर उनका नियंत्रण न के बराबर था और इसलिए उन्हें आवश्यक सामग्री, रसद आदि के लिए व्यापार, कर या लूटमार पर ही निर्भर रहना पड़ता था।

दिल्ली से सुदूर बंगाल और सिंध के **गैरिसन शहरों** का नियंत्रण बहुत ही कठिन था। बगावत, युद्ध, यहाँ तक कि खराब मौसम से भी उनसे संपर्क के नाज़ुक सूत्र छिन्न-भिन्न हो जाते थे। शासन को अफ़गानिस्तान से आनेवाले हमलावरों और उन सूबेदारों से बराबर चुनौती मिलती रहती थी, जो ज़रा-सी कमज़ोरी का आभास मिलते ही विद्रोह का झंडा खड़ा कर देते थे। इन चुनौतियों के चलते सल्तनत बड़ी मुश्किल से किसी तरह अपने आपको बचाए हुए थी। इसका विस्तार हुआ ग़यासुद्दीन बलबन, अलाउद्दीन ख़लजी और मुहम्मद तुग़लक़ के राज्यकाल में।

सल्तनत की 'भीतरी सीमाओं' में जो अभियान चले उनका लक्ष्य था गैरिसन शहरों की पृष्ठभूमि में स्थित भीतरी क्षेत्रों की स्थिति को मज़बूत करना। इन अभियानों के दौरान गंगा-यमुना के दोआब से जंगलों को साफ़ कर दिया गया और शिकारी-संग्राहकों तथा चरवाहों को उनके पर्यावास से

खदेड़ दिया गया। वह ज़मीन किसानों को दे दी गई और कृषि-कार्य को प्रोत्साहन दिया गया। व्यापार-मार्गों की सुरक्षा और क्षेत्रीय व्यापार की उन्नति की खातिर नए किले और शहर बनाए-बसाए गए।

दूसरा विस्तार सल्तनत की बाहरी सीमा पर हुआ। अलाउद्दीन ख़लजी के शासनकाल में दक्षिण भारत को लक्ष्य करके सैनिक अभियान शुरू हुए (देखें, मानचित्र 3) और ये अभियान मुहम्मद तुग़लक के समय में अपनी चरम सीमा पर पहुँचे। इन अभियानों में सल्तनत की सेनाओं ने हाथी, घोड़े, गुलाम और मूल्यवान धातुएँ अपने कब्ज़े में ले लीं।

दिल्ली सल्तनत की सेनाओं की शुरुआत अपेक्षाकृत कमज़ोर थी, मगर डेढ़ सौ वर्ष बाद, मुहम्मद तुग़लक़ के राज्यकाल के अंत तक इस उपमहाद्वीप का एक विशाल क्षेत्र इसके युद्ध-अभियान के अंतर्गत आ चुका था। इसने शत्रुओं की सेनाओं को परास्त किया और शहरों पर कब्ज़ा किया। इसके सूबेदार और प्रशासक मुकदमों में फ़ैसले सुनाते थे और साथ ही किसानों से कर वसूल करते थे। लेकिन इतने विशाल क्षेत्र पर इनका नियंत्रण किस सीमा तक और कितना प्रभावी था?

मानचित्र 3
अलाउद्दीन ख़लजी का दक्षिण भारत अभियान

चित्र 2
बारहवीं सदी के आखिरी दशक में बनी क़ुव्वत अल-इस्लाम मसजिद तथा उसकी मीनारें। यह जामा मसजिद दिल्ली के सुलतानों द्वारा बनाए गए सबसे पहले शहर में स्थित है। इतिहास में इस शहर को देहली-ए कुहना (पुराना शहर) कहा गया है। इस मसजिद का इल्तुतमिश और अलाउद्दीन ख़लजी ने और विस्तार किया। मीनार तीन सुलतानों-क़ुत्बउद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश और फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ द्वारा बनवाई गई थी।

मसजिद

यह अरबी का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है–ऐसा स्थान जहाँ मुसलमान अल्लाह की आराधना में सज़दा (घुटने और माथा टेककर) करते हैं। जामा मसजिद (या मसजिद-ए-जामी) वह मसजिद होती है, जहाँ अनेक मुसलमान एकत्र होकर साथ-साथ नमाज़ पढ़ते हैं। नमाज़ की रस्म के लिए सारे नमाज़ियों में से सबसे अधिक सम्माननीय और विद्वान पुरुष को इमाम (नेता) के रूप में चुना जाता है। इमाम शुक्रवार की नमाज़ के दौरान धर्मोपदेश (खुतबा) भी देता है।

नमाज़ के दौरान मुसलमान मक्का की तरफ़ मुँह करके खड़े होते हैं। भारत में मक्का पश्चिम की ओर पड़ता है। मक्का की ओर की दिशा को 'किबला' कहा जाता है।

चित्र 3
बेगमपुरी मसजिद। यह मुहम्मद तुग़लक़ के राज्यकाल में, दिल्ली में उसकी नयी राजधानी जहाँपनाह (विश्व की शरणस्थली) की मुख्य मसजिद के तौर पर बनाई गई थी। मानचित्र 1 में जहाँपनाह को ढूँढिए।

दिल्ली के सुलतानों ने सारे उपमहाद्वीप के अनेक शहरों में मसजिदें बनवाईं। इससे उनके मुसलमान और इस्लाम के रक्षक होने के दावे को बल मिलता था। समान आचार संहिता और आस्था का पालन करने वाले श्रद्धालुओं के परस्पर एक समुदाय से जुड़े होने का बोध उत्पन्न करने में भी मसजिदें सहायक थीं। एक समुदाय का अंग होने के बोध को प्रबल करना ज़रूरी था क्योंकि मुसलमान अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार की पृष्ठभूमियों से आते थे।
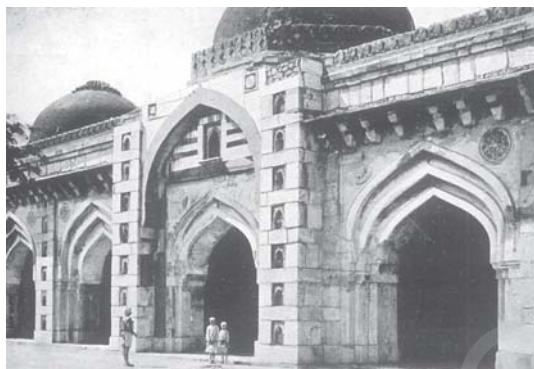
चित्र 4
मोठ की मसजिद, सिकंदर लोदी के शासनकाल में यह उसके मंत्री द्वारा बनवाई गई।

चित्र 5
जमाली कमाली की मसजिद, 1520 के दशक के आखिरी दिनों में निर्मित।

चित्र 2, 3, 4 एवं 5 की तुलना कीजिए। इन मसजिदों की समानताएँ और असमानताएँ ढूँढ निकालने की कोशिश कीजिए। चित्र 3, 4, 5 में स्थापत्य की उस परंपरा का विकास दिखाई देता है, जिसकी चरम सीमा हमें दिल्ली में शाहजहाँ की मसजिद में दिखाई देती है (अध्याय 5 में चित्र 7 देखें)।

ख़लजी और तुग़लक़ वंश के अंतर्गत प्रशासन और समेकन – नज़दीक से एक नज़र

दिल्ली सल्तनत जैसे विशाल साम्राज्य के समेकन के लिए विश्वसनीय सूबेदारों तथा प्रशासकों की ज़रूरत थी। दिल्ली के आरंभिक सुलतान, विशेषकर इल्तुतमिश, सामंतों और ज़मींदारों के स्थान पर अपने विशेष गुलामों को सूबेदार नियुक्त करना अधिक पसंद करते थे। इन गुलामों को फ़ारसी में *बंदगाँ* कहा जाता है तथा इन्हें सैनिक सेवा के लिए खरीदा जाता था। उन्हें राज्य के कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर काम करने के लिए बड़ी सावधानी से प्रशिक्षित किया जाता था। वे चूँकि पूरी तरह अपने मालिक पर निर्भर होते थे, इसलिए सुलतान भी विश्वास करके उन पर निर्भर हो सकते थे।

बेटों से बढ़कर ग़ुलाम

सुलतानों को सलाह दी जाती थी :

जिस ग़ुलाम को हमने पाला-पोसा और आगे बढ़ाया है, उसकी हमें देखभाल करनी चाहिए, क्योंकि तकदीर अच्छी हो, तभी पूरी ज़िंदगी में कभी-कभी ही योग्य और अनुभवी ग़ुलाम मिलता है। बुद्धिमानों का कहना है कि योग्य और अनुभवी ग़ुलाम बेटे से भी बढ़कर होता है...

क्या आपको ग़ुलाम को बेटे से बढ़कर मानने का कोई कारण समझ में आता है?

ख़लजी तथा तुग़लक़ शासक बंदगाँ का इस्तेमाल करते रहे और साथ ही अपने पर **आश्रित** निम्न वर्ग के लोगों को भी ऊँचे राजनीतिक पदों पर बैठाते रहे। ऐसे लोगों को सेनापति और सूबेदार जैसे पद दिए जाते थे। लेकिन इससे राजनीतिक अस्थिरता भी पैदा होने लगी।

आश्रित
जो किसी अन्य व्यक्ति के संरक्षण में रहता हो, उस पर निर्भर हो।

गुलाम और आश्रित अपने मालिकों और संरक्षकों के प्रति तो वफ़ादार रहते थे मगर उनके उत्तराधिकारियों के प्रति नहीं। नए सुलतानों के अपने नौकर होते थे। फलस्वरूप किसी नए शासक के सिंहासन पर बैठते ही प्रायः नए और पुराने सरदारों के बीच टकराहट शुरू हो जाती थी। सुलतानों द्वारा निचले तबके के लोगों को संरक्षण दिए जाने के कारण उच्च वर्ग के कई लोगों को गहरा धक्का भी लगता था और फ़ारसी तवारीख के लेखकों ने 'निचले खानदान' के लोगों को ऊँचे पदों पर बैठाने के लिए दिल्ली के सुलतानों की आलोचना भी की है।

सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ के अधिकारीजन

सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ ने अज़ीज खुम्मार नामक कलाल (शराब बनाने और बेचने वाला), फ़िरुज़ हज्जाम नामक नाई, मनका तब्बाख नामक बावर्ची और लड्ढा तथा पीरा नामक मालियों को ऊँचे प्रशासनिक पदों पर बैठाया था। चौदहवीं शताब्दी के मध्य के इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी ने इन नियुक्तियों का उल्लेख सुलतान के राजनीतिक विवेक के नाश और शासन करने की अक्षमता के उदाहरणों के रूप में किया है।

आपके ख्याल से बरनी ने सुलतान की आलोचना क्यों की थी?

पहले वाले सुलतानों की ही तरह ख़लजी और तुग़लक़ शासकों ने भी सेनानायकों को भिन्न-भिन्न आकार के इलाकों के सूबेदार के रूप में नियुक्त किया। ये इलाके इक़्ता कहलाते थे और इन्हें सँभालने वाले अधिकारी इक़्तदार या मुक़्ती कहे जाते थे। मुक़्ती का फ़र्ज था सैनिक अभियानों का नेतृत्व करना और अपने इक़्तों में कानून और व्यवस्था बनाए रखना। अपनी सैनिक सेवाओं के बदले वेतन के रूप में मुक़्ती अपने इलाकों से राजस्व की वसूली किया करते थे। राजस्व के रूप में मिली रकम से ही वे अपने सैनिकों को भी तनख्वाह देते थे। मुक़्ती लोगों पर काबू रखने का सबसे प्रभावी तरीका यह था कि उनका पद वंश-परंपरा से न चले और उन्हें कोई भी इक़्ता थोड़े-थोड़े समय के लिए ही मिले, जिसके बाद उनका स्थानांतरण कर दिया जाए। सुलतान अलाउद्दीन ख़लजी और मुहम्मद तुग़लक़ के शासनकाल में नौकरी के इन कठोर नियमों का बड़ी सख्ती से पालन होता था। मुक़्ती लोगों द्वारा एकत्रित किए गए राजस्व की रकम का हिसाब लेने के लिए राज्य द्वारा लेखा अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। इस बात का ध्यान रखा जाता था कि मुक़्ती राज्य द्वारा निर्धारित कर ही वसूलें और तय संख्या के अनुसार सैनिक रखें।

जब दिल्ली के सुलतान शहरों से दूर आंतरिक इलाकों को भी अपने अधिकार में ले आए तो उन्होंने भूमि के स्वामी सामंतों और अमीर ज़मींदारों को भी अपनी सत्ता के आगे झुकने को बाध्य कर दिया। अलाउद्दीन ख़लजी के शासनकाल में भू-राजस्व के निर्धारण और वसूली के कार्य को राज्य अपने नियंत्रण में ले आया। स्थानीय सामंतों से कर लगाने का अधिकार छीन लिया गया, बल्कि स्वयं उन्हें भी कर चुकाने को बाध्य किया गया। सुलतान के प्रशासकों ने ज़मीन की पैमाइश की और इसका हिसाब बड़ी सावधानी से रखा। कुछ पुराने सामंत और ज़मींदार राजस्व के निर्धारण और वसूली अधिकारी के रूप में सल्तनत की नौकरी करने लगे। उस समय तीन तरह के कर थे : (1) कृषि पर, जिसे *खराज* कहा जाता था और जो किसान की उपज का लगभग पचास प्रतिशत होता था; (2) मवेशियों पर; तथा (3) घरों पर।

यह याद रखना ज़रूरी है कि इस उपमहाद्वीप का काफ़ी बड़ा हिस्सा दिल्ली के सुलतानों के अधिकार से बाहर ही था। दिल्ली से बंगाल जैसे सुदूर प्रांतों का नियंत्रण कठिन था और दक्षिण भारत की विजय के तुरंत

बाद ही वह पूरा क्षेत्र फिर-से स्वतंत्र हो गया था। यहाँ तक कि गंगा के मैदानी इलाके में भी घने जंगलों वाले ऐसे क्षेत्र थे, जिनमें पैठने में सुलतान की सेनाएँ अक्षम थीं। स्थानीय सरदारों ने इन क्षेत्रों में अपना शासन जमा लिया। अलाउद्दीन ख़लजी और मुहम्मद तुग़लक़ इन इलाकों पर ज़ोर-ज़बरदस्ती अपना अधिकार जमा तो लेते थे, पर वह अधिकार कुछ ही समय तक रह पाता था।

सरदार और उनकी किलेबंदी

अफ़्रीकी देश, मोरक्को से चौदहवीं सदी में भारत आए यात्री इब्न बतूता ने बतलाया है कि सरदार कभी-कभी

चट्टानी, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी इलाकों में किले बनाकर रहते थे और कभी-कभी बाँस के झुरमुटों में। भारत में बाँस पोला नहीं होता। यह बहुत बड़ा होता है। इसके अलग-अलग हिस्से आपस में इस तरह से गुँथे होते हैं कि उन पर आग का भी असर नहीं होता और वे कुल मिलाकर बहुत ही मज़बूत होते हैं। सरदार इन जंगलों में रहते हैं, जो इनके लिए किले की प्राचीर का काम देते हैं। इस दीवार के घेरे में ही उनके मवेशी और फ़सल रहते हैं। अंदर ही पानी भी उपलब्ध रहता है, अर्थात् वहाँ एकत्रित हुआ वर्षा का जल। इसलिए उन्हें प्रबल बलशाली सेनाओं के बिना हराया नहीं जा सकता। ये सेनाएँ जंगल में घुसकर खासतौर से तैयार किए गए औज़ारों से बाँसों को काट डालती हैं।

सरदारों की रक्षा-व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

चंगेज़ ख़ान के नेतृत्व में मंगोलों ने 1219 में उत्तर-पूर्वी ईरान में ट्रांसऑक्ससियाना (आधुनिक उज़बेकिस्तान) पर हमला किया और इसके शीघ्र बाद ही दिल्ली सल्तनत को उनका धावा झेलना पड़ा। अलाउद्दीन ख़लजी और मुहम्मद तुग़लक़ के शासनकालों के आरंभ में दिल्ली पर मंगोलों के धावे बढ़ गए। इससे मजबूर होकर दोनों ही सुलतानों को एक विशाल स्थानीय सेना खड़ी करनी पड़ी। इतनी विशाल सेना को सँभालना प्रशासन के लिए भारी चुनौती थी। आइए, देखें कि दोनों सुलतानों ने इस चुनौती का सामना कैसे किया।

अलाउद्दीन ख़लजी	मुहम्मद तुग़लक़
दिल्ली पर दो बार **हमले** हुए: 1299/1300 में और 1302-1303 में। इनका सामना करने के लिए अलाउद्दीन ख़लजी ने एक विशाल स्थायी सेना खड़ी की।	मुहम्मद तुग़लक़ के शासन के प्रारंभिक वर्षों में सल्तनत पर **हमला** हुआ। मंगोल सेना परास्त हो गई। मुहम्मद तुग़लक़ को अपनी सेना की शक्ति और अपने संसाधनों पर इतना विश्वास था कि उसने ट्रांसऑक्ससियाना पर आक्रमण की योजना बना ली। एक स्थायी सेना तैयार करना उसका आक्रामक कदम था।
अलाउद्दीन ख़लजी ने अपने सैनिकों के लिए सीरी नामक एक नया **गैरिसन शहर बनाया**। मानचित्र 1 में इस शहर को ढूँढिए।	नया **गैरिसन शहर बनाने** के स्थान पर दिल्ली के चार शहरों में से सबसे पुराने शहर देहली-ए कुह्ना को निवासियों से खाली करवा कर वहाँ सैनिक छावनी बना दी गई। पुराने शहर के निवासियों को दक्षिण में बनी नयी राजधानी दौलताबाद भेज दिया गया।
सैनिकों के **पेट भरने** की समस्या को गंगा-यमुना के बीच की भूमि से कर के रूप में खेती की पैदावार इकट्ठी करके हल किया गया। किसानों की पैदावार का 50 प्रतिशत हिस्सा कर के तौर पर तय कर दिया गया था।	सेना को **खिलाने** के लिए उसी इलाके से खाद्यान्न इकट्ठा किया गया। लेकिन सैनिकों की विशाल संख्या की ज़रूरतें पूरी करने के लिए सुलतान ने अतिरिक्त कर भी लगाए। इसी दौरान उस क्षेत्र में अकाल भी पड़ा।
सैनिकों को **वेतन** भी देना होता था। अलाउद्दीन ने सैनिकों को इक़्ता के स्थान पर नकद वेतन देना तय किया। सैनिक अपना आवश्यक सामान दिल्ली के व्यापारियों से खरीदते थे और यह आशंका थी कि व्यापारी अपनी चीज़ों की कीमतें बढ़ा देंगे। इसे रोकने के लिए अलाउद्दीन ने दिल्ली में चीज़ों की कीमतों पर नियंत्रण लागू कर दिया। अफ़सर बड़ी सावधानी से कीमतों का सर्वेक्षण करते थे और जो व्यापारी निश्चित दरों का उल्लंघन करते थे, उन्हें सज़ा मिलती थी।	मुहम्मद तुग़लक़ भी अपने सैनिकों को नकद **वेतन** देता था। लेकिन कीमतों पर नियंत्रण करने की जगह उसने कुछ-कुछ आज की कागज़ी मुद्रा की तरह 'टोकन' (सांकेतिक) मुद्रा चलाई। ये सिक्के धातु के बने होते थे लेकिन सोने-चाँदी के न होकर सस्ती धातु के। चौदहवीं सदी के लोगों को इस मुद्रा पर भरोसा नहीं था। वे बड़े चतुर थे। अपने सोने-चाँदी के सिक्के वे बचाकर रख लेते थे और अपने तमाम कर इस टोकन मुद्रा से ही चुकाते थे। इस सस्ती मुद्रा जैसे जाली सिक्के भी बड़ी आसानी से बनाए जा सकते थे।
अलाउद्दीन के **प्रशासनिक कदम** काफ़ी सफल रहे और इतिहासकारों ने कीमतों में कमी और बाज़ार में वस्तुओं की कुशलता से आपूर्ति के लिए उसके शासनकाल की बहुत प्रशंसा की है। मंगोल आक्रमणों के खतरे का भी उसने सफलतापूर्वक सामना किया।	मुहम्मद तुग़लक़ द्वारा उठाए गए **प्रशासनिक कदम** बेहद असफल रहे। कश्मीर पर उसका आक्रमण पूरी तरह विफल रहा था। तब उसने तूरान पर हमला करने का इरादा छोड़ दिया और अपनी विशाल सेना को भंग कर दिया। इस बीच उसने प्रशासन संबंधी जो कदम उठाए थे, उनसे कई परेशानियाँ पैदा हो गईं। दौलताबाद ले जाए जाने से लोग बहुत नाराज़ थे। करों में वृद्धि और गंगा-यमुना के दोआब में अकाल से विक्षुब्ध जनता, बगावत पर उतर आई और मुहम्मद तुग़लक़ को अंततः टोकन मुद्रा भी वापस लेनी पड़ी।

इन तमाम असफलताओं की गिनती करने में हम कभी-कभी भूल जाते हैं कि सल्तनत के इतिहास में पहली बार दिल्ली के किसी सुलतान ने मंगोल इलाके को फ़तह करने के अभियान की योजना बनाई थी। जहाँ अलाउद्दीन ख़लजी का बल प्रतिरक्षा पर था, वहाँ मुहम्मद तुग़लक़ के द्वारा उठाए गए कदम मंगोलों के विरुद्ध सैनिक आक्रमण की योजना का हिस्सा थे।

पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में सल्तनत

तालिका 1 को फिर से देखें। आप पाएँगें कि तुग़लक़ वंश के बाद 1526 तक दिल्ली तथा आगरा पर सैयद तथा लोदी वंशों का राज्य रहा। तब तक जौनपुर, बंगाल, मालवा, गुजरात, राजस्थान तथा पूरे दक्षिण भारत में स्वतंत्र शासक उठ खड़े हुए थे। उनकी राजधानियाँ समृद्ध थीं और राज्य फल-फूल रहे थे। इसी काल में अफ़गान तथा राजपूतों जैसे नए शासक समूह भी उभरे।

इस काल में स्थापित राज्यों में से कुछ छोटे तो थे पर शक्तिशाली थे और उनका शासन बहुत ही कुशल तथा सुव्यवस्थित तरीके से चल रहा था। शेरशाह सूर (1540-1545) ने बिहार में अपने चाचा के एक छोटे-से इलाके के प्रबंधक के रूप में काम शुरू किया था और आगे चलकर उसने इतनी उन्नति की कि मुग़ल सम्राट हुमायूँ (1530-1540, 1555-1556) तक को चुनौती दी और परास्त किया। शेरशाह ने दिल्ली पर अधिकार करके स्वयं अपना राजवंश स्थापित किया। हालाँकि सूरी वंश ने केवल पंद्रह वर्ष (1540-1555) शासन किया, लेकिन इसके प्रशासन ने अलाउद्दीन ख़लजी वाले कई तरीकों को अपनाकर उन्हें और भी चुस्त बना दिया। महान सम्राट अकबर (1556-1605) ने जब मुग़ल साम्राज्य को समेकित किया, तो उसने अपने प्रतिमान के रूप में शेरशाह की प्रशासन व्यवस्था को ही अपनाया था।

अन्यत्र

'तीन श्रेणियाँ', 'ईश्वरीय शांति', नाइट और धर्मयुद्ध

तीन श्रेणियों का विचार सबसे पहले ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में फ्रांस में सूत्रबद्ध किया गया। इसके अनुसार समाज को तीन वर्गों में विभाजित किया गया–प्रार्थना करने वाला वर्ग, युद्ध करने वाला वर्ग और खेती करने वाला वर्ग। तीन वर्गों में समाज के इस विभाजन को ईसाई धर्म का समर्थन भी प्राप्त था। इस विभाजन से ईसाई धर्म को समाज में अपने प्रबल प्रभाव को और भी दृढ़ करने में सहायता मिलती थी। इसी विभाजन से योद्धाओं का एक नया समूह भी उभरा। इन योद्धाओं को 'नाइट' कहा जाता था।

ईसाई धर्म एक समूह को संरक्षण देता था और अपनी "ईश्वरीय शांति" की अवधारणा के प्रसार में इनका उपयोग करता था। नाइटों से अपेक्षा की जाती थी कि वे धर्म और ईश्वर की सेवा में समर्पित योद्धा रहें। कोशिश यह रहती थी कि इन योद्धाओं को आपसी लड़ाई-भिड़ाई से विमुख करके उन मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध करने भेज दिया जाए, जिन्होंने यरुशलम शहर पर कब्ज़ा कर रखा था। इस प्रयत्न के परिणामस्वरूप सैनिक अभियानों की एक श्रृंखला चली, जिसे 'क्रूसेड' (धर्मयुद्ध) कहा गया। ईश्वर तथा धर्म की सेवा में किए गए इन अभियानों ने नाइटों की हैसियत पूरी तरह बदल डाली। पहले इन नाइटों की गिनती कुलीनों में नहीं होती थी। मगर फ्रांस में ग्यारहवीं सदी के अंत तक और जर्मनी में उससे एक सदी बाद इन योद्धाओं के दीन-हीन अतीत को भुला दिया गया था। बारहवीं सदी तक तो कुलीन वर्ग के लोग भी नाइट कहलाना चाहने लगे थे।

कल्पना करें

आप अलाउद्दीन ख़लजी या मुहम्मद तुग़लक़ के शासन काल में एक किसान हैं और आप सुलतान द्वारा लगाया गया कर नहीं चुका सकते। आप क्या करेंगे?

फिर से याद करें

1. दिल्ली में पहले-पहल किसने राजधानी स्थापित की?
2. दिल्ली के सुलतानों के शासनकाल में प्रशासन की भाषा क्या थी?
3. किसके शासन के दौरान सल्तनत का सबसे अधिक विस्तार हुआ?
4. इब्न बतूता किस देश से भारत में आया था?

आइए समझें

5. 'न्याय चक्र' के अनुसार सेनापतियों के लिए किसानों के हितों का ध्यान रखना क्यों ज़रूरी था?

6. सल्तनत की 'भीतरी' और 'बाहरी' सीमा से आप क्या समझते हैं?

7. मुक़्ती अपने कर्त्तव्यों का पालन करें, यह सुनिश्चित करने के लिए कौन-कौन से कदम उठाए गए थे? आपके विचार में सुलतान के आदेशों का उल्लंघन करना चाहने के पीछे उनके क्या कारण हो सकते थे?

8. दिल्ली सल्तनत पर मंगोल आक्रमणों का क्या प्रभाव पड़ा?

बीज शब्द

इक़्ता

तारीख

गैरिसन

मंगोल

लिंग

खराज

आइए विचार करें

9. क्या आपकी समझ में तवारीख के लेखक, आम जनता के जीवन के बारे में कोई जानकारी देते हैं?

10. दिल्ली सल्तनत के इतिहास में रज़िया सुलतान अपने ढंग की एक ही थीं। क्या आपको लगता है कि आज महिला नेताओं को ज़्यादा आसानी से स्वीकार किया जाता है?

11. दिल्ली के सुलतान जंगलों को क्यों कटवा देना चाहते थे? क्या आज भी जंगल उन्हीं कारणों से काटे जा रहे हैं?

आइए करके देखें

12. पता लगाइए कि क्या आपके इलाके में दिल्ली के सुलतानों द्वारा बनवाई गई कोई इमारत है? क्या आपके इलाके में और भी कोई ऐसी इमारत है, जो बारहवीं से पंद्रहवीं सदी के बीच बनाई गई हो? इनमें से कुछ इमारतों का वर्णन कीजिए और उनके रेखाचित्र बनाइए।

4 मुग़ल साम्राज्य
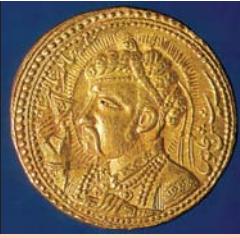
मध्यकाल में किसी भी शासक के लिए भारतीय उपमहाद्वीप जैसे बड़े क्षेत्र पर, जहाँ लोगों एवं संस्कृतियों में इतनी अधिक विविधताएँ हो, शासन कर पाना अत्यंत ही कठिन कार्य था। अपने पूर्ववर्तियों के विपरीत मुग़लों ने एक साम्राज्य की स्थापना की और वह कार्य पूरा किया, जो अब तक केवल छोटी अवधियों के लिए ही संभव जान पड़ता था। सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध से, इन्होंने दिल्ली और आगरा से अपने राज्य का विस्तार शुरू किया और सत्रहवीं शताब्दी में लगभग संपूर्ण महाद्वीप पर अधिकार प्राप्त कर लिया। उन्होंने प्रशासन के ढाँचे तथा शासन संबंधी जो विचार लागू किए, वे उनके राज्य के पतन के बाद भी टिके रहे। यह एक ऐसी राजनैतिक धरोहर थी, जिसके प्रभाव से उपमहाद्वीप में उनके पश्चात् आने वाले शासक अपने को अछूता न रख सकें। आज भारत के प्रधानमंत्री, स्वतंत्रता दिवस पर मुग़ल शासकों के निवासस्थान, दिल्ली के लालकिले की प्राचीर से राष्ट्र को संबोधित करते हैं।

चित्र 1
लालकिला
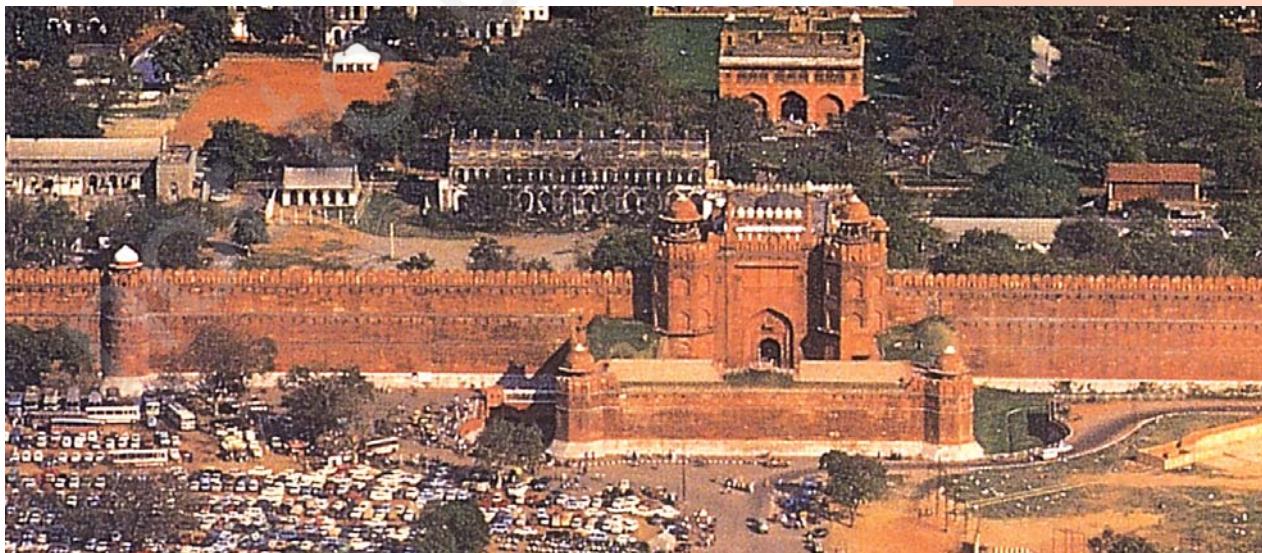
मुग़ल कौन थे?

मुग़ल दो महान शासक वंशों के वंशज थे। माता की ओर से वे चीन और मध्य एशिया के मंगोल शासक चंग़ेज़ ख़ान (जिसकी मृत्यु 1227 में हुई) के उत्तराधिकारी थे। पिता की ओर से वे ईरान, इराक एवं वर्तमान तुर्की के शासक तैमूर (जिसकी मृत्यु 1404 में हुई) के वंशज थे। परंतु मुग़ल अपने को मुग़ल या मंगोल कहलवाना पसंद नहीं करते थे। ऐसा इसलिए था, क्योंकि चंग़ेज़ ख़ान से जुड़ी स्मृतियाँ सैंकड़ों व्यक्तियों के नरसंहार से संबंधित थीं। यही स्मृतियाँ मुग़लों के प्रतियोगियों उज़बेगों से भी संबंधित थीं। दूसरी तरफ़, मुग़ल, तैमूर के वंशज होने पर गर्व का अनुभव करते थे, ज़्यादा इसलिए क्योंकि उनके इस महान पूर्वज ने 1398 में दिल्ली पर कब्ज़ा कर लिया था।

क्या यह चित्र दिखाता है कि मुग़ल राजत्व का दावा जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में करते थे?

चित्र 2

तैमूर, उसके उत्तराधिकारी और मुग़ल सम्राटों का एक लघुचित्र (1702-12)। मध्य में तैमूर है और उसकी दाहिने ओर उसका पुत्र मीरन शाह (जो प्रथम मुग़ल सम्राट बाबर का लकड़दादा था) और उसके बाद अबु सेद (बाबर के दादा), तैमूर की बायीं ओर सुलतान मोहम्मद मिर्ज़ा (बाबर के परदादा) और उमर शेख (बाबर के पिता) हैं। तैमूर की दाहिनी ओर तीसरे, चौथे और पाँचवे व्यक्ति मुग़ल सम्राट बाबर, अकबर और शाहजहाँ हैं और उसकी दायीं ओर उसी क्रम से हुमायूँ, जहाँगीर और औरंगज़ेब हैं।
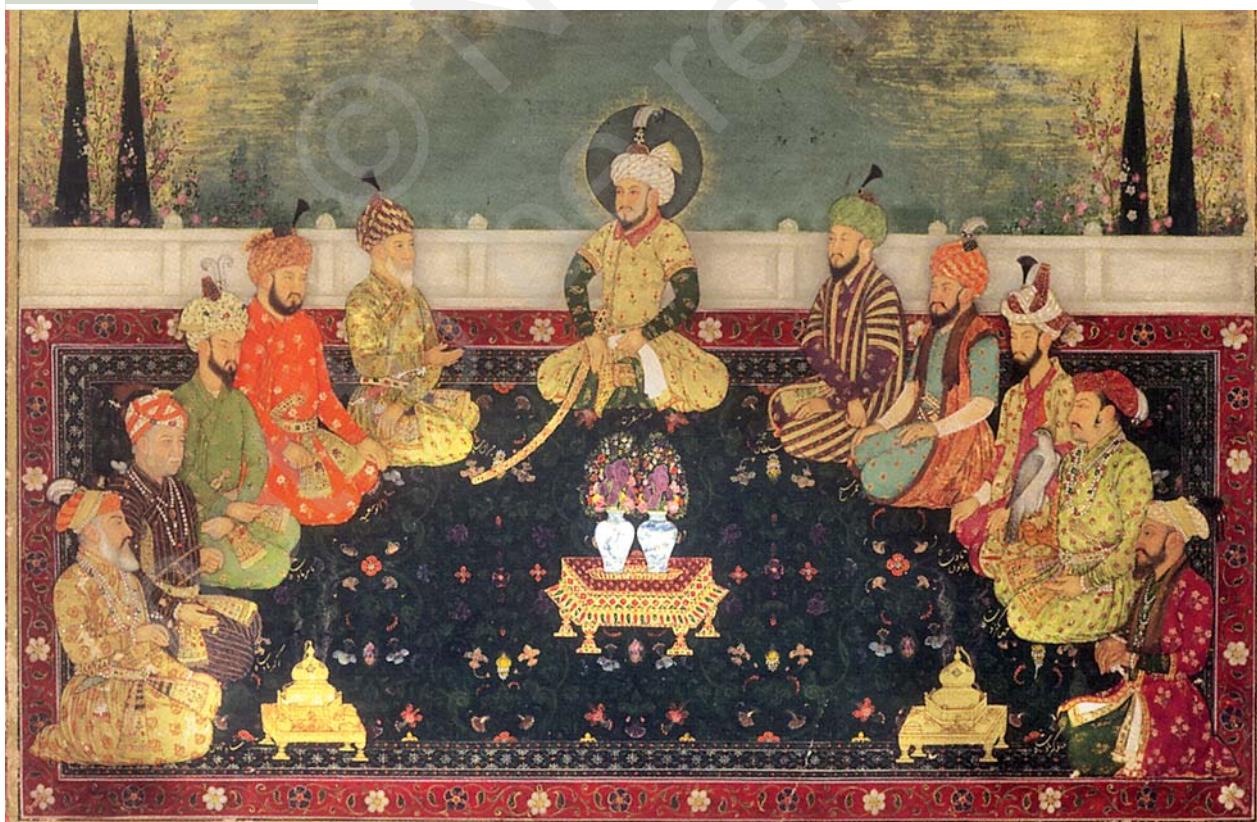
उन्होंने अपनी वंशावली का प्रदर्शन चित्र बनवाकर किया। प्रत्येक मुग़ल शासक ने तैमूर के साथ अपना चित्र बनवाया। चित्र 1 को देखिए, जो तैमूर और मुग़लों की समूह में तसवीर प्रस्तुत करता है।

मुग़ल सैन्य अभियान

प्रथम मुग़ल शासक बाबर (1526-1530) ने जब 1494 में फरघाना राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त किया, तो उसकी उम्र केवल बारह वर्ष की थी। मंगोलों की दूसरी शाखा, उज़बेगों के आक्रमण के कारण उसे अपनी पैतृक गद्दी छोड़नी पड़ी। अनेक वर्षों तक भटकने के बाद उसने 1504 में काबुल पर कब्ज़ा कर लिया। उसने 1526 में दिल्ली के सुलतान इब्राहिम लोदी को पानीपत में हराया और दिल्ली और आगरा को अपने कब्ज़े में कर लिया।

चित्र 3
मुग़ल फ़ौज अभियान पर

तालिका 1 में मुग़लों के प्रमुख सैन्य अभियानों को दिखाया गया है। इसे ध्यान से पढ़िए। क्या आप इस लंबे घटनाक्रम में कोई पुनरावृत्ति ढूँढ सकते हैं? उदाहरण के लिए आप यह गौर करेंगे कि अफ़गान, मुग़ल सत्ता के लिए तात्कालिक खतरा थे। मुग़लों और अहोम (अध्याय 7), सिक्खों (अध्याय 8 और 10) एवं मेवाड़ और मारवाड़ (अध्याय 9) के संबंधों पर भी गौर करें। सफ़ाविद ईरान से अकबर और हुमायूँ के संबंधों में क्या अंतर था? क्या औरंगज़ेब के शासनकाल में गोलकुंडा और बीजापुर के अधिग्रहण से दक्कन में युद्ध का अंत हो पाया?

चित्र 4
सोलहवीं शताब्दी के युद्धों में तोप और गोलाबारी का पहली बार इस्तेमाल हुआ। बाबर ने इनका पानीपत की पहली लड़ाई में प्रभावी ढंग से प्रयोग किया।

तालिका 1

मुगल सम्राट

प्रमुख अभियान और घटनाएँ

बाबर 1526-1530 ने

1526 में पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी एवं उसके अफ़गान समर्थकों को हराया।
1527 में खानुवा में राणा सांगा, राजपूत राजाओं और उनके समर्थकों को हराया।
1528 में चंदेरी में राजपूतों को हराया।
अपनी मृत्यु से पहले दिल्ली और आगरा में मुग़ल नियंत्रण स्थापित किया।

हुमायूँ 1530-1540 एवं 1555-1556

(1) हुमायूँ ने अपने पिता की वसीयत के अनुसार जायदाद का बँटवारा किया। प्रत्येक भाई को एक एक प्रांत मिला। उसके भाई मिर्ज़ा कामरान की महत्त्वाकाँक्षाओं के कारण हुमायूँ अपने अफ़ग़ान प्रतिद्वंद्वियों के सामने फीका पड़ गया। शेर खान ने हुमायूँ को दो बार हराया—1539 में चौसा में और 1540 में कन्नौज में। इन पराजयों ने उसे ईरान की ओर भागने को बाध्य किया।
(2) ईरान में हुमायूँ ने सफ़ाविद शाह की मदद ली। उसने 1555 में दिल्ली पर पुनः कब्ज़ा कर लिया परंतु उससे अगले वर्ष इस इमारत में एक दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गयी।

अकबर 1556-1605

13 वर्ष की अल्पायु में अकबर सम्राट बना।
उसके शासनकाल को तीन अवधियों में विभाजित किया जा सकता है।
(1) 1556 और 1570 के मध्य अकबर अपने संरक्षक बैरम ख़ान और अपने घरेलू कर्मचारियों से स्वतंत्र हो गया। उसने सूरी और अन्य अफ़गानों, निकटवर्ती राज्यों मालवा और गोंडवाना तथा अपने सौतेले भाई मिर्ज़ा हाक़िम और उज़बेगों के विद्रोहों को दबाने के लिए सैन्य अभियान चलाए। 1568 में सिसौदियों की राजधानी चित्तौड़ और 1569 में रणथम्भौर पर कब्ज़ा कर लिया गया।
(2) 1570 और 1585 के मध्य गुजरात के विरुद्ध सैनिक अभियान हुए। इन अभियानों के पश्चात् उसने पूर्व में बिहार, बंगाल और उड़ीसा में अभियान चलाए, जिन्हें 1579-80 में मिर्ज़ा हाक़िम के पक्ष में हुए विद्रोह ने और जटिल कर दिया।
(3) 1585-1605 के मध्य अकबर के साम्राज्य का विस्तार हुआ। उत्तर-पश्चिम में अभियान चलाए गए। सफ़ाविदों को हराकर कांधार पर कब्ज़ा किया गया और कश्मीर को भी जोड़ लिया गया। मिर्ज़ा हाकिम की मृत्यु के पश्चात् काबुल को भी उसने अपने राज्य में मिला लिया। दक्कन में अभियानों की शुरुआत हुई और बरार, खानदेश और अहमदनगर के कुछ हिस्सों को भी उसने अपने राज्य में मिला लिया। अपने शासन के अंतिम वर्षों में अकबर की सत्ता राजकुमार सलीम के विद्रोहों के कारण लड़खड़ायी। यही सलीम आगे चलकर सम्राट जहाँगीर कहलाया।
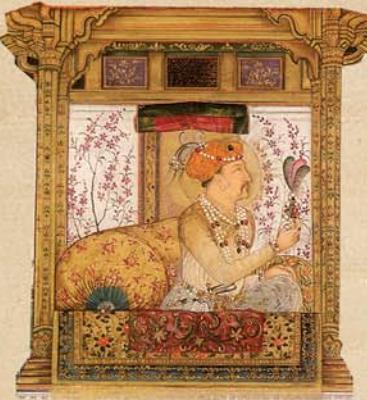
जहाँगीर 1605–1627

जहाँगीर ने अकबर के सैन्य अभियानों को आगे बढ़ाया। मेवाड़ के सिसोदिया शासक अमर सिंह ने मुग़लों की सेवा स्वीकार की। इसके बाद सिक्खों, अहोमों और अहमदनगर के खिलाफ़ अभियान चलाए गए, जो पूर्णतः सफल नहीं हुए। जहाँगीर के शासन के अंतिम वर्षों में राजकुमार खुर्रम, जो बाद में सम्राट शाहजहाँ कहलाया, ने विद्रोह किया। जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ ने शाहजहाँ को हाशिए पर धकेलने के प्रयास किए, जो असफल रहे।

शाहजहाँ 1627–1658

दक्कन में शाहजहाँ के अभियान जारी रहे। अफ़गान अभिजात खान जहान लोदी ने विद्रोह किया और वह पराजित हुआ। अहमदनगर के विरुद्ध अभियान हुआ जिसमें बुंदेलों की हार हुई और ओरछा पर कब्ज़ा कर लिया गया। उत्तर-पश्चिम में बल्ख पर कब्ज़ा करने के लिए उज़बेगों के विरुद्ध अभियान हुआ जो असफल रहा। परिणामस्वरूप कांधार सफ़ाविदों के हाथ में चला गया। 1632 में अंततः अहमदनगर को मुग़लों के राज्य में मिला लिया गया और बीजापुर की सेनाओं ने सुलह के लिए निवेदन किया। 1657–58 में शाहजहाँ के पुत्रों के बीच उत्तराधिकार को लेकर झगड़ा शुरू हो गया। इसमें औरंगज़ेब की विजय हुई और दारा शिकोह समेत उसके तीनों भाइयों को मौत के घाट उतार दिया गया। शाहजहाँ को उसकी शेष ज़िंदगी के लिए आगरा में कैद कर दिया गया।

औरंगज़ेब 1658–1707

(1) 1663 में उत्तर-पूर्व में अहोमों की पराजय हुई परंतु उन्होंने 1680 में पुनः विद्रोह कर दिया। उत्तर-पश्चिम में यूसफज़ई और सिक्खों के विरुद्ध अभियानों को अस्थायी सफलता मिली। मारवाड़ के राठौड़ राजपूतों ने मुग़लों के खिलाफ़ विद्रोह किया। इसका कारण था उनकी आंतरिक राजनीति और उत्तराधिकार के मसलों में मुग़लों का हस्तक्षेप। मराठा सरदार, शिवाजी के विरुद्ध मुग़ल अभियान प्रारंभ में सफल रहे। परंतु औरंगज़ेब ने शिवाजी का अपमान किया और शिवाजी आगरा स्थित मुग़ल कैदखाने से भाग निकले। उन्होंने अपने को स्वतंत्र शासक घोषित करने के पश्चात् मुग़लों के विरुद्ध पुनः अभियान चलाए। राजकुमार अकबर ने औरंगज़ेब के विरुद्ध विद्रोह किया, जिसमें उसे मराठों और दक्कन की सल्तनत का सहयोग मिला। अन्ततः वह सफ़ाविद ईरान भाग गया।

(2) अकबर के विद्रोह के पश्चात् औरंगज़ेब ने दक्कन के शासकों के विरुद्ध सेनाएँ भेजी। 1685 में बीजापुर और 1687 में गोलकुंडा को मुग़लों ने अपने राज्य में मिला लिया। 1698 में औरंगज़ेब ने दक्कन में मराठों, जो छापामार पद्धति का उपयोग कर रहे थे, के विरुद्ध अभियान का प्रबंध स्वयं किया। औरंगज़ेब को उत्तर भारत में सिक्खों, जाटों और सतनामियों, उत्तर-पूर्व में अहोमों और दक्कन में मराठों के विद्रोहों का सामना करना पड़ा। उसकी मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के लिए युद्ध शुरू हो गया।

मानचित्र 1
अकबर का शासन, 1605

उत्तराधिकार की मुग़ल परंपराएँ

मुग़ल ज्येष्ठाधिकार के नियम में विश्वास नहीं करते थे जिसमें ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता के राज्य का उत्तराधिकारी होता था। इसके विपरीत, उत्तराधिकार में वे सहदायाद की मुग़ल और तैमूर वंशों की प्रथा को अपनाते थे जिसमें उत्तराधिकार का विभाजन समस्त पुत्रों में कर दिया जाता था। तालिका 1 में दिए गए रंगीन उद्धरणों को पढ़िए और मुग़ल राजकुमारों के विद्रोहों से जुड़े प्रमाणों पर गौर कीजिए। आपके अनुसार उत्तराधिकार का कौन-सा तरीका सही था–ज्येष्ठाधिकार या सहदायाद?

राजपूतों के साथ मुग़लों की शादियाँ

जहाँगीर की माँ कच्छवा की राजकुमारी थी। वह अम्बर (वर्तमान में जयपुर) के राजपूत शासक की पुत्री थी। शाहजहाँ की माँ एक राठौड़ राजकुमारी थी। वह मारवाड़ (जोधपुर) के राजपूत शासक की पुत्री थी।

मुग़लों के अन्य शासकों के साथ संबंध

तालिका 1 को फिर से देखें। आप पाएँगे कि मुग़लों ने उन शासकों के विरुद्ध लगातार अभियान किए, जिन्होंने उनकी सत्ता को स्वीकार करने से इंकार कर दिया। जब मुग़ल शक्तिशाली हो गए तो अन्य कई शासकों ने स्वेच्छा से उनकी सत्ता स्वीकार कर ली। राजपूत इसका एक अच्छा उदाहरण हैं। अनेकों ने मुग़ल घराने में अपनी पुत्रियों के विवाह करके उच्च पद प्राप्त किए। परंतु कइयों ने विरोध भी किया।

सिसोदिया राजपूत लंबे समय तक मुग़लों की सत्ता को स्वीकार करने से इंकार करते रहे, परंतु जब वे हारे तो मुग़लों ने उनके साथ सम्माननीय व्यवहार किया और उन्हें उनकी जागीरें (वतन), वतन जागीर के रूप में वापिस कर दीं। पराजित करने परंतु अपमानित न करने के बीच सावधानी से बनाए गए संतुलन की वजह से मुग़ल भारत के अनेक शासकों और सरदारों पर अपना प्रभाव बढ़ा पाए। परंतु इस संतुलन को हमेशा बरकरार रखना कठिन था। एक बार फिर तालिका 1 देखें। गौर करें कि जब शिवाजी मुग़ल सत्ता स्वीकार करने आए तो औरंगज़ेब ने उनका अपमान किया। इस अपमान का क्या परिणाम हुआ?

मनसबदार और जागीरदार

जैसे-जैसे साम्राज्य में विभिन्न क्षेत्र सम्मिलित होते गए, वैसे-वैसे मुग़लों ने तरह-तरह के सामाजिक समूहों के सदस्यों को प्रशासन में नियुक्त करना आरंभ किया। शुरू-शुरू में ज़्यादातर सरदार, तुर्की (तूरानी) थे, लेकिन अब इस छोटे समूह के साथ-साथ उन्होंने शासक वर्ग में ईरानियों, भारतीय मुसलमानों, अफ़गानों, राजपूतों, मराठों और अन्य समूहों को सम्मिलित किया। मुगलों की सेवा में आने वाले नौकरशाह 'मनसबदार' कहलाए।

'मनसबदार' शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के लिए होता था, जिन्हें कोई मनसब यानी कोई सरकारी हैसियत अथवा पद मिलता था। यह मुग़लों द्वारा चलाई गई श्रेणी व्यवस्था थी, जिसके ज़रिए (1) पद; (2) वेतन; एवं (3) सैन्य उत्तरदायित्व, निर्धारित किए जाते थे। पद और वेतन का निर्धारण जात की संख्या पर निर्भर था। जात की संख्या जितनी अधिक होती थी, दरबार में अभिजात की प्रतिष्ठा उतनी ही बढ़ जाती थी और उसका वेतन भी उतना ही अधिक होता था।

जो सैन्य उत्तरदायित्व मनसबदारों को सौंपे जाते थे उन्हीं के अनुसार उन्हें घुड़सवार रखने पड़ते थे।

मनसबदार अपने सवारों को निरीक्षण के लिए लाते थे। वे अपने सैनिकों के घोड़ों को दगवाते थे एवं सैनिकों का पंजीकरण करवाते थे। इन कार्यवाहियों के बाद ही उन्हें सैनिकों को वेतन देने के लिए धन मिलता था।

मनसबदार अपना वेतन राजस्व एकत्रित करने वाली भूमि के रूप में पाते थे, जिन्हें *जागीर* कहते थे और जो तकरीबन 'इक़्ताओं' के समान थीं। परंतु

जात की श्रेणियाँ

5,000 जात वाले अभिजातों का दर्ज़ा 1,000 जात वाले अभिजातों से ऊँचा था। अकबर के शासन काल में 29 ऐसे मनसबदार थे जो 5,000 जात की पदवी के थे। औरंगज़ेब के शासनकाल तक ऐसे मनसबदारों की संख्या 79 हो गई। क्या इसका अर्थ यह हुआ कि राज्य का खर्चा बढ़ गया।

मनसबदार, मुक़्तियों से भिन्न, अपने जागीरों पर नहीं रहते थे और न ही उन पर प्रशासन करते थे। उनके पास अपनी जागीरों से केवल राजस्व एकत्रित करने का अधिकार था। यह राजस्व उनके नौकर उनके लिए एकत्रित करते थे, जबकि वे स्वयं देश के किसी अन्य भाग में सेवारत रहते थे।

चित्र 5
अपने सवारों के साथ एक मनसबदार अभियान पर

चित्र 6
शाहजहाँ के राज-काल के एक लघु चित्र के ब्यौरे। यहाँ जहाँगीर के समय के भ्रष्टाचार को दिखाया गया है–(1) भ्रष्ट अफ़सर रिश्वत लेते हुए; (2) एक कर अधिकारी गरीब किसानों को सज़ा देते हुए।

अकबर के शासनकाल में इन जागीरों का सावधानीपूर्वक आकलन किया जाता था, ताकि इनका राजस्व मनसबदार के वेतन के तकरीबन बराबर रहे। औरंगज़ेब के शासनकाल तक पहुँचते-पहुँचते स्थिति बदल गई। अब प्राप्त राजस्व, मनसबदार के वेतन से बहुत कम था। मनसबदारों की संख्या में भी अत्यधिक वृद्धि हुई, जिसके कारण उन्हें जागीर मिलने से पहले एक लंबा इंतजार करना पड़ता था। इन सभी कारणों से जागीरों की संख्या में कमी हो गई। फलस्वरूप कई जागीरदार, जागीर रहने पर यह कोशिश करते थे कि वे जितना राजस्व वसूल कर सकें, कर लें। अपने शासनकाल के अंतिम वर्षों में औरंगज़ेब इन परिवर्तनों पर नियंत्रण नहीं रख पाया। इस कारण किसानों को अत्यधिक मुसीबतों का सामना करना पड़ा।

ज़ब्त और ज़मीदार

मुग़लों की आमदनी का प्रमुख साधन किसानों की उपज से मिलने वाला राजस्व था। अधिकतर स्थानों पर किसान ग्रामीण कुलीनों यानी कि मुखिया या स्थानीय सरदारों के माध्यम से राजस्व देते थे। समस्त मध्यस्थों के लिए, चाहे वे स्थानीय ग्राम के मुखिया हो या फिर शक्तिशाली सरदार हों, मुग़ल एक ही शब्द–ज़मीदार–का प्रयोग करते थे।

अकबर के राजस्वमंत्री टोडरमल ने दस साल (1570-1580) की कालावधि के लिए कृषि की पैदावार, कीमतों और कृषि भूमि का सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण किया। इन आँकड़ों के आधार पर, प्रत्येक फ़सल पर नकद के रूप में कर (राजस्व) निश्चित कर दिया गया। प्रत्येक सूबे (प्रांत) को राजस्व मंडलों में बाँटा गया और प्रत्येक की हर फ़सल के लिए राजस्व दर की अलग सूची बनायी गई। राजस्व प्राप्त करने की

इस व्यवस्था को 'ज़ब्त' कहा जाता था। यह व्यवस्था उन स्थानों पर प्रचलित थी जहाँ पर मुग़ल प्रशासनिक अधिकारी भूमि का निरीक्षण कर सकते थे और सावधानीपूर्वक उनका हिसाब रख सकते थे। ऐसा निरीक्षण गुजरात और बंगाल जैसे प्रांतों में संभव नहीं हो पाया।

कुछ क्षेत्रों में ज़मीदार इतने शक्तिशाली थे कि मुग़ल प्रशासकों द्वारा शोषण किए जाने की स्थिति में वे विद्रोह कर सकते थे। कभी-कभी एक ही जाति के ज़मीदार और किसान मुग़ल सत्ता के खिलाफ़ मिलकर विद्रोह कर देते थे। सत्रहवीं शताब्दी के आखिर से ऐसे किसान विद्रोहों ने मुग़ल साम्राज्य के स्थायित्व को चुनौती दी।

अकबर नामा और आइने-अकबरी

अकबर ने अपने करीबी मित्र और दरबारी अबुल फ़ज़्ल को आदेश दिया कि वह उसके शासनकाल का इतिहास लिखे। अबुल फ़ज़्ल ने यह इतिहास तीन जिल्दों में लिखा और इसका शीर्षक है *अकबरनामा।* पहली ज़िल्द में अकबर के पूर्वजों का बयान है और दूसरी अकबर के शासनकाल की घटनाओं का विवरण देती है। तीसरी जिल्द *आइने-अकबरी* है। इसमें अकबर के प्रशासन, घराने, सेना, राजस्व और साम्राज्य के भूगोल का ब्यौरा मिलता है। इसमें समकालीन भारत के लोगों की परंपराओं और संस्कृतियों का भी विस्तृत वर्णन है। *आइने-अकबरी* का सब से रोचक आयाम है, विविध प्रकार की चीज़ों–फ़सलों, पैदावार, कीमतों, मज़दूरी और राजस्व–का सांख्यिकीय विवरण।
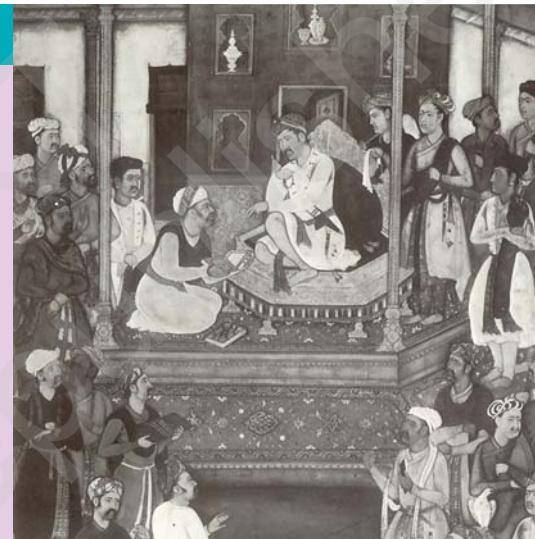
चित्र 7
अबुल फ़ज़्ल से अकबरनामा *लेते हुए अकबर*

अकबर की नीतियाँ – नज़दीक से एक नज़र

प्रशासन के मुख्य अभिलक्षण अकबर ने निर्धारित किए थे और इनका विस्तृत वर्णन अबुल फ़ज़्ल की *अकबरनामा*, विशेषकर *आइने-अकबरी* में मिलता है। अबुल फ़ज़्ल के अनुसार साम्राज्य कई प्रांतों में बँटा हुआ था, जिन्हें 'सूबा' कहा जाता था। सूबों के प्रशासक 'सूबेदार' कहलाते थे, जो राजनैतिक तथा सैनिक, दोनों प्रकार के कार्यों का निर्वाह करते थे।

प्रत्येक प्रांत में एक वित्तीय अधिकारी भी होता था जो 'दीवान' कहलाता था। कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए सूबेदार को अन्य अफ़सरों का

सहयोग प्राप्त था, जैसे कि बक्शी (सैनिक वेतनाधिकारी), सदर (धार्मिक और धर्मार्थ किए जाने वाले कार्यों का मंत्री), फ़ौजदार (सेनानायक) और कोतवाल (नगर का पुलिस अधिकारी) का।

जहाँगीर के दरबार पर नूरजहाँ का प्रभाव
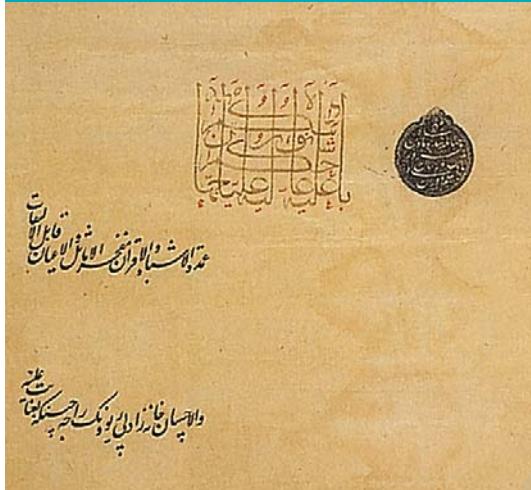
मेहरुन्निसा ने 1611 में जहाँगीर से विवाह किया और उसे नूरजहाँ का खिताब मिला। नूरजहाँ हमेशा जहाँगीर के प्रति अत्यधिक वफ़ादार रही और उसको समय-समय पर सहयोग देती रही। नूरजहाँ के सम्मान में जहाँगीर ने चाँदी के सिक्के जारी किए, जिनमें एक ओर उसके स्वयं के खिताब उत्कीर्ण थे और दूसरी ओर यह वाक्य: 'रानी बेगम नूरजहाँ के नाम से गढ़ा हुआ।'

बाईं ओर दिया गया दस्तावेज़, नूरजहाँ द्वारा जारी किया गया आदेश (फ़रमान) है। चौकोर मोहर बताती है–'उदात्त और महान महारानी नूरजहाँ पादशाह बेगम का आदेश'। गोल मोहर के अनुसार, 'शाह जहाँगीर के प्रताप से महारानी, चन्द्रमा जैसी वैभवशाली बन गई : हम कामना करते हैं कि नूरजहाँ पादशाह इस युग की सर्वोत्तम महिला बने'

चित्र 8
नूरजहाँ का फ़रमान

मतांधता
ऐसी व्याख्या या कथन जिसे अधिकारपूर्ण कहकर यह आशा की जाए कि उस पर बिना कोई प्रश्न उठाए उसे स्वीकार कर लिया जाएगा।

अकबर के अभिजात, बड़ी सेनाओं का संचालन करते थे और बड़ी मात्रा में वे राजस्व खर्च कर सकते थे। जब तक वे वफ़ादार रहे, साम्राज्य का कार्य सफलतापूर्वक चलता रहा परंतु सत्रहवीं सदी के अंत तक कई अभिजातों ने अपने स्वतंत्र ताने-बाने बुन लिए थे। साम्राज्य के प्रति उनकी वफ़ादारी उनके निजी हितों के कारण कमज़ोर पड़ गई थी।

1570 में अकबर जब फतेहपुर सीकरी में था, तो उसने उलेमा, ब्राह्मणों, जेसुइट पादरियों (जो रोमन कैथोलिक थे) और ज़रदुश्त धर्म के अनुयायियों के साथ धर्म के मामलों पर चर्चा शुरू की। ये चर्चाएँ इबादतखाना में हुईं। अकबर की रुचि विभिन्न व्यक्तियों के धर्मों और रीति-रिवाज़ों में थी। इस विचार-विमर्श से अकबर की समझ बनी कि जो विद्वान धार्मिक रीति और **मतांधता** पर बल देते हैं, वे अकसर कट्टर होते हैं। उनकी शिक्षाएँ प्रजा के बीच विभाजन और असामंजस्य पैदा करतीं हैं। ये अनुभव अकबर को सुलह-ए-कुल या 'सर्वत्र शांति' के विचार की ओर ले गए। सहिष्णुता की यह धारणा विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में अंतर नहीं करती थी अपितु

चित्र 9
इबादतख़ाना में अकबर विभिन्न धर्मों के विद्वानों के साथ चर्चा करते हुए

इस चित्र में क्या आप जेसुइट पादरियों को पहचान सकते हैं?

इसका केंद्रबिंदु थी नीतिशास्त्र की एक व्यवस्था, जो सर्वत्र लागू की जा सकती थी और जिसमें केवल सच्चाई, न्याय और शांति पर बल था।

अबुल फ़ज़्ल ने *सुलह-ए-कुल* के इस विचार पर आधारित शासन-दृष्टि बनाने में अकबर की मदद की। शासन के इस सिद्धांत को जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी अपनाया।

सुलह-ए-कुल

अकबर की *सुलह-ए-कुल* की नीति का उनके पुत्र जहाँगीर ने इस प्रकार वर्णन किया है:

ईश्वरीय अनुकंपा के विस्तृत आँचल में सभी वर्गों और सभी धर्मों के अनुयायियों की एक जगह है। इसलिए... उसके विशाल साम्राज्य में, जिसकी चारों ओर की सीमाएँ केवल समुद्र से ही निर्धारित होती थी विरोधी धर्मों के अनुयायियों और तरह-तरह के अच्छे-बुरे विचारों के लिए जगह थी। यहाँ असहिष्णुता का मार्ग बंद था। यहाँ सुन्नी और शिया एक ही मसज़िद में इकट्ठे होते थे और ईसाई और यहूदी एक ही गिरजे में प्रार्थना करते थे। उसने सुसंगत तरीके से 'सार्विक शांति' (सुलह-ए-कुल) के सिद्धांत का पालन किया।

सत्रहवीं शताब्दी में और उसके पश्चात् मुग़ल साम्राज्य

मुग़ल साम्राज्य की प्रशासनिक और सैनिक कुशलता के फलस्वरूप आर्थिक और वाणिज्यिक समृद्धि में वृद्धि हुई। विदेशी यात्रियों ने इसे वैसा धनी देश बताया, जैसा कि किस्से-कहानियों में वर्णित होता रहा है। परंतु यही यात्री इसी प्रचुरता के साथ मिलने वाली दरिद्रता को देखकर विस्मित रह गए। सामाजिक असमानताएँ साफ़ दिखाई पड़ती थीं। शाहजहाँ के शासनकाल के बीसवें वर्ष के दस्तावेज़ों से हमें पता चलता है कि ऐसे मनसबदार, जिनको उच्चतम पद प्राप्त था, कुल 8000 में से 445 ही थे। कुल मनसबदारों की एक छोटी संख्या 5.6 प्रतिशत को ही साम्राज्य के अनुमानित राजस्व का 61.5 प्रतिशत, स्वयं उनके व उनके सवारों के वेतन के रूप में दिया जाता था।

मुग़ल सम्राट और उनके मनसबदार अपनी आय का बहुत बड़ा भाग वेतन और वस्तुओं पर लगा देते थे। इस ख़र्चे से शिल्पकारों और किसानों को लाभ होता था, चूँकि वे वस्तुओं और फ़सल की पूर्ति करते थे। परंतु राजस्व का भार इतना था कि प्राथमिक उत्पादकों–किसान और शिल्पकारों–के पास निवेश के लिए बहुत कम धन बचता था। इनमें से जो बहुत गरीब थे, मुश्किल से ही पेट भर पाते थे। वे उत्पादन शक्ति बढ़ाने के लिए अतिरिक्त संसाधनों में-औज़ारों और अन्य वस्तुओं में-निवेश करने की बात सोच भी नहीं सकते थे। ऐसी अर्थव्यवस्था में ज़्यादा धनी किसान, शिल्पकारों के समूह, व्यापारी और महाजन ज़्यादा लाभ उठाते थे।

मुग़लों के कुलीन वर्ग के हाथों में बहुत धन और संसाधन थे, जिनके कारण सत्रहवीं सदी के अंतिम वर्षों में वे अत्यधिक शक्तिशाली हो गए। जैसे-जैसे मुग़ल सम्राट की सत्ता पतन की ओर बढ़ती गई, वैसे-वैसे विभिन्न क्षेत्रों में सम्राट के सेवक, स्वयं ही सत्ता के शक्तिशाली केंद्र बनने लगे। इनमें से कुछ ने नए वंश स्थापित किए और हैदराबाद एवं अवध जैसे प्रांतों में अपना नियंत्रण जमाया। यद्यपि वे दिल्ली के मुग़ल सम्राट को स्वामी के रूप में मान्यता देते रहे, तथापि अठारहवीं शताब्दी तक साम्राज्य के कई प्रांत अपनी स्वतंत्र राजनैतिक पहचान बना चुके थे। इनके बारे में हम दसवें अध्याय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

अन्यत्र

राजा और रानियाँ

सोलहवीं सदी में, मुग़लों के लगभग समकालीन, संसार के विभिन्न भागों में भी कई महान राजा-रानियाँ थे। इनमें ऑटोमन तुर्की के सुलतान सुलेमान (1520-1566) शामिल हैं। उसके राज में ऑटोमन राज्य का विस्तार यूरोप की ओर हुआ। उसने हंगरी को अपने राज्य के साथ मिला लिया और ऑस्ट्रिया को घेर लिया। उसकी फ़ौजों ने बगदाद और इराक भी हथिया लिया। मोरक्को तक उत्तरी अफ्रीका का बहुत-सा हिस्सा ऑटोमन सत्ता को मानता था। सुलेमान ने ऑटोमन नौसेना का पुनर्गठन किया। पूर्वी भूमध्य सागर के इलाकों पर इस नौसेना के प्रभुत्व की वज़ह से स्पेन के साथ उसकी प्रतिस्पर्धा हुई। अरब सागर में इस नौसेना ने पुर्तगालियों को चुनौती दी। सम्राट को 'अल-कानूनी' (विधिनिर्माता) का खिताब दिया गया क्योंकि उसके शासनकाल में बड़ी संख्या में नियम-कानून बनाए गए थे। इन नियमों का लक्ष्य यह था कि बढ़ते हुए साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए प्रशासनिक तरीकों का मानकीकरण हो ताकि किसानों को बेगार और भारी करों से बचाया जा सके। आगे चलकर सत्रहवीं शताब्दी में ऑटोमन क्षेत्रों में जब सार्वजनिक व्यवस्था का पतन हुआ, तो सुलेमान कानूनी के काल को आदर्श शासनकाल के रूप में याद किया जाने लगा।

?

अकबर के अन्य समकालीन शासकों के बारे में पता लगाएँ-इंग्लैंड की शासक रानी एलिज़ाबेथ (1558-1603); ईरान का सफ़ाविद शासक शाह अब्बास (1588-1629); और इनसे कहीं ज़्यादा विवादास्पद रूसी शासक ज़ार ईवान चतुर्थ बेसिलयेविच (1530-1584) जो 'ईवान दि टेरिबल' नाम से कुख्यात है।

कल्पना कीजिए

बाबर और अकबर शासक बनने के समय आपकी ही उम्र के थे। कल्पना करें कि आपको पैतृक संपत्ति के रूप में एक राज्य प्राप्त होता है। आप अपने राज्य को स्थायी और समृद्ध कैसे बनाएँगें?

फिर से याद करें

1. सही जोड़े बनाएँ :

मनसब	मारवाड़
मंगोल	गर्वनर
सिसौदिया राजपूत	उज़बेग
राठौर राजपूत	मेवाड़
नूरजहाँ	पद
सूबेदार	जहाँगीर

2. रिक्त स्थान भरें :

(क) ____________ अकबर के सौतेले भाई, मिर्ज़ा हाकिम के राज्य की राजधानी थी

(ख) दक्कन की पाँचों सल्तनत बरार, खानदेश, अहमद नगर, ____________ और ____________ थीं।

(ग) यदि जात एक मनसबदार के पद और वेतन का द्योतक था, तो सवार उसके ____________ को दिखाता था।

(घ) अकबर के दोस्त और सलाहकार, अबुल फ़ज़्ल ने उसकी ____________ के विचार को गढ़ने में मदद की जिसके द्वारा वह विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और जातियों से बने समाज पर राज्य कर सका।

3. मुग़ल राज्य के अधीन आने वाले केंद्रीय प्रांत कौन-से थे?

4. मनसबदार और जागीर में क्या संबंध था।

बीज शब्द

मुग़ल

मनसब

जागीरदार

जात

सवार

सुलह-ए-कुल

ज्येष्ठाधिकार

सहदायाद

ज़ब्त

ज़मींदार

आइए समझें

5. मुग़ल प्रशासन में ज़मींदार की क्या भूमिका थी?

6. शासन-प्रशासन संबंधी अकबर के विचारों के निर्माण में धार्मिक विद्वानों से होने वाली चर्चाएँ कितनी महत्त्वपूर्ण थीं?

7. मुग़लों ने खुद को मंगोल की अपेक्षा तैमूर के वंशज होने पर क्यों बल दिया?

आइए विचार करें

8. भू-राजस्व से प्राप्त होने वाली आय, मुग़ल साम्राज्य के स्थायित्व के लिए कहाँ तक ज़रूरी थी?

9. मुग़लों के लिए केवल तूरानी या ईरानी ही नहीं, बल्कि विभिन्न पृष्ठभूमि के मनसबदारों की नियुक्ति क्यों महत्त्वपूर्ण थी?

10. मुग़ल साम्राज्य के समाज की ही तरह वर्तमान भारत, आज भी अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक इकाइयों से बना हुआ है? क्या यह राष्ट्रीय एकीकरण के लिए एक चुनौती है?

11. मुग़ल साम्राज्य की अर्थव्यवस्था के लिए कृषक अनिवार्य थे। क्या आप सोचते हैं कि वे आज भी इतने ही महत्त्वपूर्ण हैं? क्या आज भारत में अमीर और गरीब के बीच आय का फासला मुग़लों के काल की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया है?

आइए करके देखें

12. मुग़ल साम्राज्य का उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों पर अनेक तरह से प्रभाव पड़ा। पता लगाइए कि जिस नगर, गाँव अथवा क्षेत्र में आप रहते हैं, उस पर इसका कोई प्रभाव पड़ा था?

5 शासक और इमारतें

चित्र 1 क़ुत्बमीनार के पहले छज्जे को प्रदर्शित करता है। क़ुत्बउद्दीन ऐबक ने लगभग 1199 में इसका निर्माण करवाया था। छज्जे के नीचे छोटे मेहराब तथा ज्यामितीय रूपरेखाओं द्वारा निर्मित नमूने को देखें। क्या आपको छज्जे के नीचे अभिलेखों की दो पट्टियाँ दिखाई दे रही हैं? ये अभिलेख अरबी में हैं। गौर करें कि मीनार का बाहरी हिस्सा घुमावदार तथा कोणीय है। ऐसी सतह पर अभिलेख लिखने के लिए काफ़ी परिशुद्धता की आवश्यकता होती थी। सर्वाधिक योग्य कारीगर ही इस कार्य को संपन्न कर सकते थे। याद रखें कि आठ सौ वर्ष पूर्व केवल कुछ ही इमारतें पत्थर या ईंटों की बनी होती थीं। तेरहवीं शताब्दी में क़ुत्बमीनार जैसी इमारत का देखने वालों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

आठवीं और अठारहवीं शताब्दियों के बीच राजाओं तथा उनके अधिकारियों ने दो तरह की इमारतों का निर्माण किया। पहली तरह की इमारतों में–सुरक्षित,

चित्र 1
क़ुत्बमीनार पाँच मंज़िली इमारत है। अभिलेखों की पट्टियाँ इसके पहले छज्जे के नीचे हैं। इस इमारत की पहली मंज़िल का निर्माण क़ुत्बउद्दीन ऐबक तथा शेष मंज़िलों का निर्माण 1229 के आस-पास इल्तुतमिश द्वारा करवाया गया। कई वर्षों में यह इमारत आँधी-तूफ़ान तथा भूकंप की वज़ह से क्षतिग्रस्त हो गई थी। अलाउद्दीन ख़लजी, मुहम्मद तुग़लक़, फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ तथा इब्राहिम लोदी ने इसकी मरम्मत करवाई।
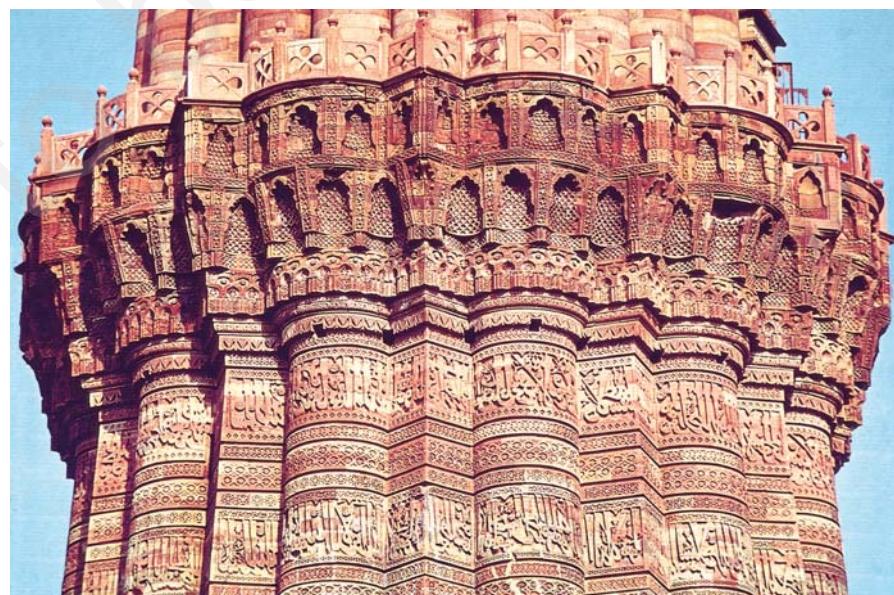
संरक्षित तथा इस दुनिया और दूसरी दुनिया में आराम-विराम की भव्य जगहें–किले, महल तथा मकबरे थे। दूसरी श्रेणी में मंदिर, मसजिद, हौज़, कुएँ, सराय तथा बाज़ार जैसी जनता के उपयोग की इमारतें थीं। राजाओं से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे अपनी प्रजा की देख-भाल करेंगे तथा प्रजा के उपयोग और आराम के लिए इमारतों का निर्माण करवाकर राजा उनकी प्रशंसा पाने की आशा करते थे। इस तरह के निर्माण कार्य, व्यापारियों सहित अन्य व्यक्तियों के द्वारा भी किए जाते थे। वे मंदिरों, मसजिदों और कुँओं का निर्माण करवाते थे। परंतु घरेलू स्थापत्य–व्यापारियों की विशाल हवेलियों के अवशेष अठारहवीं शताब्दी से ही मिलने शुरू होते हैं।

आगरा किले के निर्माण में लगा श्रम

अकबर द्वारा निर्मित आगरा किले के निर्माण हेतु 2,000 पत्थर काटने वालों, 2,000 सीमेंट व चूना बनाने वालों तथा 8,000 मज़दूरों की आवश्यकता पड़ी।

अभियांत्रिकी कौशल तथा निर्माण कार्य

स्मारकों से हमें उनके निर्माण में प्रयुक्त शिल्प विज्ञान का भी पता चलता है। छत का ही उदाहरण ले लीजिए। हम चार दीवारों के आर-पार लकड़ी की शहतीरों अथवा एक पत्थर की पटिया रखकर छत बना सकते हैं। लेकिन यह कार्य उस समय बहुत कठिन हो जाता है जब हम एक विस्तृत **अधिरचना** वाले विशाल कक्ष का निर्माण करना चाहते हैं। इसके लिए अधिक परिष्कृत कौशल की ज़रूरत होती है।

अधिरचना
भूतल से ऊपर किसी भी भवन का भाग

सातवीं और दसवीं शताब्दी के मध्य वास्तुकार भवनों में और अधिक कमरे, दरवाज़े और खिड़कियाँ बनाने लगे। छत, दरवाज़े और खिड़कियाँ अभी भी दो ऊर्ध्वाधर खंभों के आर-पार एक अनुप्रस्थ शहतीर रखकर बनाए जाते थे। वास्तुकला की यह शैली 'अनुप्रस्थ टोडा निर्माण' कहलाई जाती है। आठवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच मंदिरों, मसजिदों, मकबरों तथा सीढ़ीदार कुँओं (बावली) से जुड़े भवनों के निर्माण में इस शैली का प्रयोग हुआ।

चित्र 2 क

चित्र 2 ख

चित्र 2 क
दिल्ली की क़ुव्वत अल-इस्लाम मसजिद का एक हिस्सा (बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध)

चित्र 2 ख
मेहराब के निर्माण में अनुप्रस्थ टोडा तकनीक का इस्तेमाल

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में मंदिर निर्माण

चित्र 3 ख

चित्र 3 क *शिव की स्तुति में बनाए गए कंदरिया महादेव मंदिर का निर्माण चंदेल राजवंश के राजा धंगदेव द्वारा 999 में किया गया था।* ***चित्र 3 ख*** *मंदिर की योजना है। एक अलंकृत द्वार से इसके प्रवेश भाग और मुख्य सभा भवन (महामंडप), जहाँ नृत्य का आयोजन होता था, तक पहुँचा जाता था। प्रमुख देवता की मूर्ति मुख्य मंदिर (गर्भगृह) में रखी जाती थी। धार्मिक अनुष्ठान इसी जगह संपन्न किए जाते थे तथा इसमें केवल राजा, उनका निकटतम परिवार तथा पुरोहित एकत्रित होते थे। खजुराहो समूह में राजकीय मंदिर सम्मिलित थे जहाँ सामान्य जनमानस को जाने की अनुमति नहीं थी। ये मंदिर सुपरिष्कृत उत्कीर्णित मूर्त्तियों से अलंकृत थे।*
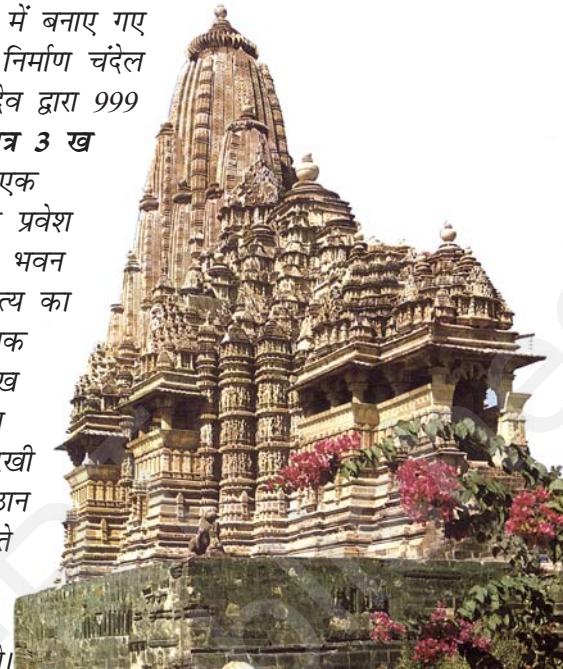
चित्र 3 क

चित्र 4

तंजावूर के राजराजेश्वर मंदिर का शिखर, उस समय के मंदिरों में सबसे ऊँचा था। इसका निर्माण कार्य आसान नहीं था, क्योंकि उन दिनों कोई क्रेन नहीं थी। शिखर के शीर्ष पर 90 टन का पत्थर ले जाना इतना भारी होता था कि उसे व्यक्ति अपनेआप उठाकर नहीं ले जा सकते थे। इसलिए इस काम के लिए वास्तुकारों ने मंदिर के शीर्ष तक पहुँचने के लिए चढ़ाईदार रास्ता बनवाया। रोलरों द्वारा भारी पत्थरों को इस रास्ते से ऊपर ले जाया गया। इस काम के लिए चार किलोमीटर से ज़्यादा लंबा पथ तैयार किया जाता था, जिससे चढ़ाई बहुत खड़ी न हो।

मंदिर बन जाने के बाद इसे गिरा दिया गया, लेकिन उस क्षेत्र के लोगों ने मंदिर निर्माण के अनुभव को काफ़ी लंबे समय तक याद रखा। आज भी मंदिर के पास के एक गाँव को चारूपल्लम कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है – चढ़ाईदार रास्ते का गाँव।

?

दो मंदिरों के शिखरों में आप क्या अंतर देखते हैं? क्या आप यह समझ सकते हैं कि राजराजेश्वर मंदिर का शिखर, कंदरिया महादेव मंदिर के शिखर से दोगुना ऊँचा है?

बारहवीं शताब्दी में दो प्रौद्योगिकीय एवं शैली संबंधी परिवर्तन दिखाई पड़ने लगते हैं-(1) दरवाज़ों और खिड़कियों के ऊपर की अधिरचना का भार कभी-कभी मेहराबों पर डाल दिया जाता था। वास्तुकला का यह 'चापाकार' रूप था।

चित्र 2 क व 2 ख की तुलना चित्र 5 क और 5 ख से करें।

(2) निर्माण कार्य में चूना-पत्थर, सीमेंट का प्रयोग बढ़ गया। यह उच्च श्रेणी की सीमेंट होती थी, जिसमें पत्थर के टुकड़ों के मिलाने से कंकरीट बनती थी। इसकी वज़ह से विशाल ढाँचों का निर्माण सरलता और तेज़ी से होने लगा। चित्र 6 में निर्माण स्थल पर एक नज़र डालें।

?

बताइए कि मज़दूर क्या कर रहे हैं, कौन-से औज़ार दिखाए गए हैं तथा पत्थरों को ढोने के लिए किन साधनों का प्रयोग किया गया है।
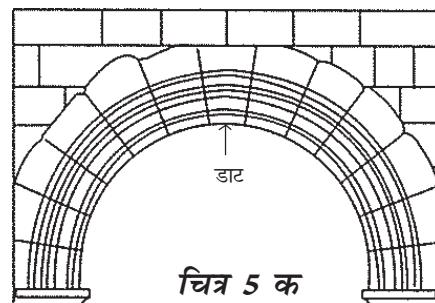
चित्र 5 क

मेहराब का 'विशुद्ध' रूप
मेहराब के मध्य में 'डाट' अधिरचना के भार को मेहराब की आधारशिला पर डाल देती है।

चित्र 5 ख

मेहराब का विशुद्ध रूप अलाई दरवाज़े का मेहराब (प्रारंभिक चौदहवीं सदी), क़ुव्वत अल-इस्लाम मसजिद, दिल्ली
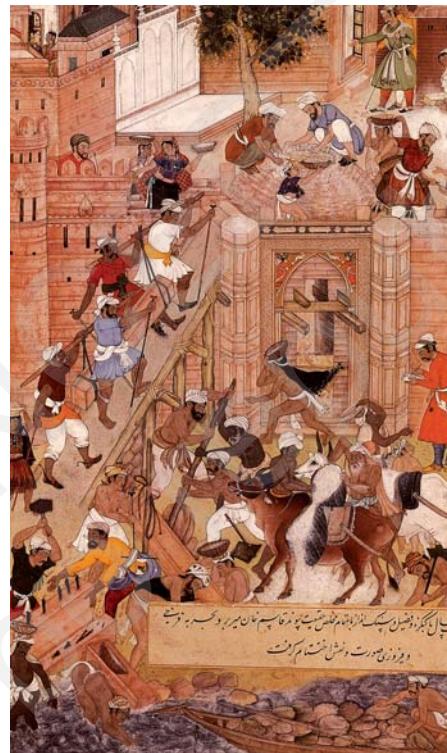
चित्र 6

आगरा किले में जल-द्वार निर्माण को दिखाती एक चित्रकारी। इसे अकबरनामा से लिया गया है।

मंदिरों, मसजिदों और हौज़ों का निर्माण

मंदिरों और मसजिदों का निर्माण बहुत सुंदर तरीके से किया जाता था क्योंकि वे उपासना के स्थल थे। वे अपने संरक्षक की शक्ति, धन-वैभव तथा भक्ति भाव का भी प्रदर्शन करते थे। उदाहरण के लिए, राजराजेश्वर मंदिर को लिया जा सकता है। एक अभिलेख से इस बात का संकेत मिलता है कि इस मंदिर का निर्माण राजा राजदेव ने

एक शाही वास्तुशिल्पी

मुग़ल बादशाह शाहजहाँ के इतिहासकार ने शासक को 'साम्राज्य व धर्म की कार्यशाला का वास्तुशिल्पी' बताया।

अपने देवता राजराजेश्वरम की उपासना हेतु किया था। ध्यान दें कि राजा और उसके देवता के नाम काफ़ी मिलते-जुलते हैं। राजा ने इस तरह का नाम इसलिए रखा, क्योंकि यह नाम मंगलकारी था और राजा स्वयं को ईश्वर के रूप में दिखाना चाहता था। धार्मिक अनुष्ठान के ज़रिए मंदिर में एक देवता (राजा राजदेव), दूसरे देवता (राजराजेश्वरम) का सम्मान करता था।

सभी विशालतम मंदिरों का निर्माण राजाओं ने करवाया था। मंदिर के अन्य लघु देवता शासक के सहयोगियों तथा अधीनस्थों के देवी-देवता थे। यह मंदिर शासक और उसके सहयोगियों द्वारा शासित विश्व का एक लघु रूप ही था। जिस तरह से वे राजकीय मंदिरों में इकट्ठे होकर अपने देवताओं की उपासना करते थे, ऐसा प्रतीत होता था मानो उन्होंने देवताओं के न्यायप्रिय शासन को पृथ्वी पर ला दिया हो।

मुसलमान सुलतान तथा बादशाह स्वयं को भगवान के अवतार होने का दावा तो नहीं करते थे किंतु फ़ारसी दरबारी इतिहासों में सुलतान का वर्णन 'अल्लाह की परछाई' के रूप में हुआ है। दिल्ली की एक मसजिद के अभिलेख से पता चलता है कि अल्लाह ने अलाउद्दीन को

चित्र 7
अपनी नयी राजधानी शाहजहाँनाबाद (1650-56) में शाहजहाँ द्वारा बनवाई गई जामी मसजिद की योजना
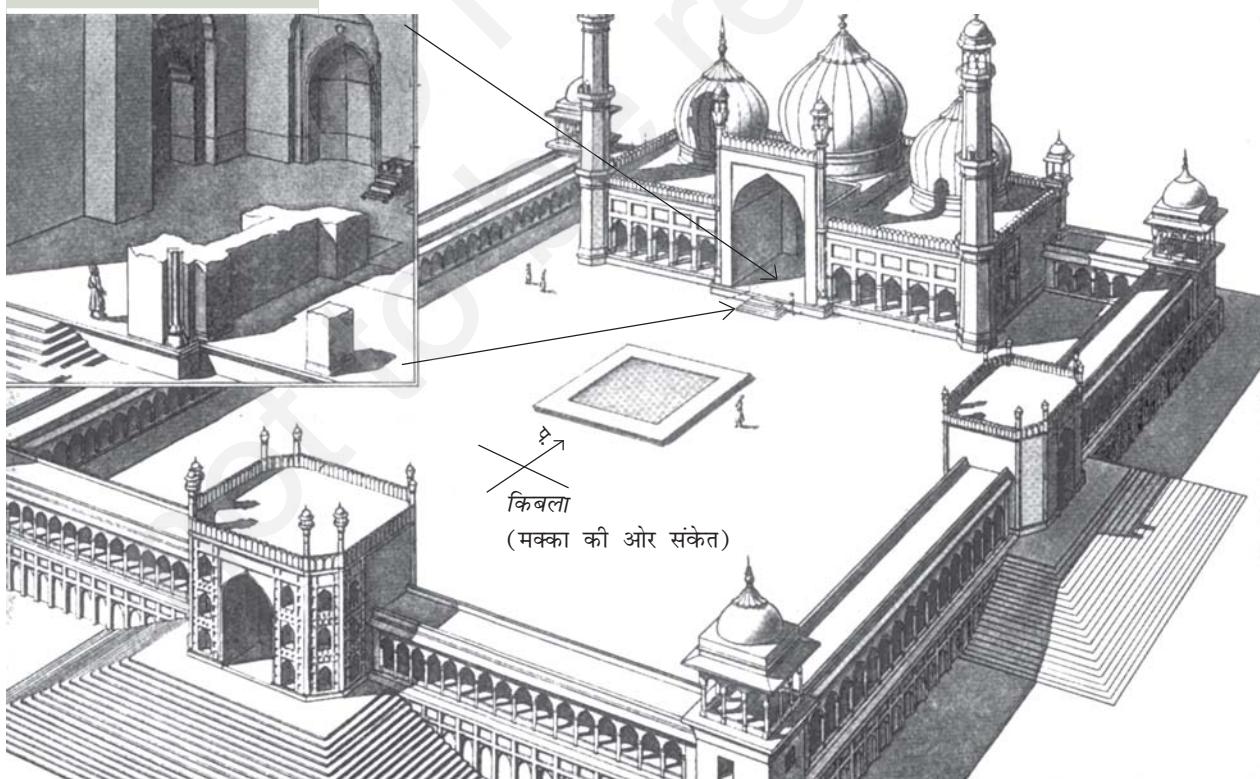
शासक इसलिए चुना था, क्योंकि उसमें अतीत के महान विधिकर्त्ताओं मूसा और सुलेमान की विशिष्टताएँ मौजूद थीं। सबसे महान विधिकर्त्ता और वास्तुकार अल्लाह स्वयं था। उसने अव्यवस्था को दूर करके विश्व का सृजन किया तथा एक व्यवस्था और संतुलन कायम किया।

सत्ता में आने पर प्रत्येक राजवंश के राजा ने शासक होने के अपने नैतिक अधिकार पर और ज़ोर डाला। उपासना के स्थानों के निर्माण ने शासकों को, ईश्वर के साथ अपने घनिष्ठ संबंध की उद्घोषणा करने का मौका दिया। ऐसी उद्घोषणाएँ तेज़ी से बदलती राजनीति के संदर्भ में महत्त्व ग्रहण कर लेती थीं। शासकों ने विद्वान तथा धर्मनिष्ठ व्यक्तियों को भी आश्रय प्रदान किया और अपनी राजधानियों तथा नगरों को महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्रों के रूप में परिवर्तित करने का प्रयास किया। इन सबसे उनके शासन तथा राज्य को ख्याति मिली।

व्यापक समझ यह थी कि न्यायप्रिय राजा का राज ऐसा होगा, जहाँ खुशहाली होगी और जहाँ पर्याप्त वर्षा होगी। इसी तरह हौज़ों और जलाशयों के निर्माण द्वारा बहुमूल्य पानी उपलब्ध कराने के कार्य की बहुत प्रशंसा की जाती थी। सुलतान इल्तुतमिश ने देहली-ए-कुहना के एकदम निकट एक विशाल तालाब का निर्माण करके व्यापक सम्मान प्राप्त किया। इस विशाल जलाशय को हौज़-ए-सुल्तानी अथवा 'राजा का तालाब' कहा जाता था। क्या आप इसे अध्याय 3 के मानचित्र 1 में ढूँढ सकते हैं? शासक प्रायः सामान्य लोगों के लिए बड़े और छोटे हौज़ों और तालाबों का निर्माण करवाते थे। कभी-कभी वे किसी मंदिर, मसजिद (चित्र 7 में जामी मसजिद के छोटे हौज़ पर ध्यान दें) अथवा गुरुद्वारे (सिक्खों के एकत्रित होने और उपासना का स्थान, चित्र 8) का हिस्सा होते थे।

जल का महत्त्व

फ़ारसी शब्द, आबाद और आबादी 'आब' शब्द से निकले हैं जिसका अर्थ है पानी। आबाद शब्द उस जगह के लिए इस्तेमाल होता हैं, जहाँ बसावट हो। इसका एक अन्य अर्थ खुशहाली भी है। आबादी का अर्थ जनसंख्या एवं समृद्धि दोनों ही है।

चित्र 8

हरमंदर साहब (स्वर्ण मंदिर) और उसका पवित्र सरोवर, अमृतसर

मंदिरों को क्यों नष्ट किया गया?

राजा, मंदिरों का निर्माण अपनी शक्ति, धन-संपदा और ईश्वर के प्रति निष्ठा के प्रदर्शन हेतु करते थे। ऐसे में यह बात आश्चर्यजनक नहीं लगती है कि जब उन्होंने एक दूसरे के राज्यों पर आक्रमण किया, तो उन्होंने प्रायः ऐसी

इमारतों पर निशाना साधा। नवीं शताब्दी के आरंभ में जब पांड्यन राजा श्रीमर श्रीवल्लभ ने श्रीलंका पर आक्रमण कर राजा सेन प्रथम (831-851) को पराजित किया था, उसके विषय में बौद्ध भिक्षु व इतिहासकार धम्मकित्ति ने लिखा है कि, "सारी बहुमूल्य चीज़ें वह ले गया... रत्न महल में रखी स्वर्ण की बनी बुद्ध की मूर्ति... और विभिन्न मठों में रखी सोने की प्रतिमाओं – इन सभी को उसने ज़ब्त कर लिया।" सिंहली शासक के आत्माभिमान को इससे जो आघात लगा था, उसका बदला लिया जाना स्वाभाविक था। अगले सिंहली शासक सेन द्वितीय ने अपने सेनापति को, पांड्यों की राजधानी मदुरई पर आक्रमण करने का आदेश दिया। बौद्ध इतिहासकार ने लिखा है कि इस अभियान में बुद्ध की स्वर्ण मूर्त्ति को ढूँढ निकालने तथा वापस लाने हेतु महत्त्वपूर्ण प्रयास किए गए।

इसी तरह ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में जब चोल राजा राजेंद्र प्रथम ने अपनी राजधानी में शिव मंदिर का निर्माण करवाया था तो उसने पराजित शासकों से ज़ब्त की गई उत्कृष्ट प्रतिमाओं से इसे भर दिया। एक अधूरी सूची में निम्न चीज़ें सम्मिलित थीं: चालुक्यों से प्राप्त एक सूर्य पीठिका, एक गणेश मूर्त्ति तथा दुर्गा की कई मूर्तियाँ, पूर्वी चालुक्यों से प्राप्त एक नंदी मूर्ति, उड़ीसा के कलिंगों से प्राप्त भैरव (शिव का एक रूप) तथा भैरवी की एक प्रतिमा तथा बंगाल के पालों से प्राप्त काली की मूर्त्ति।

ग़ज़नी का सुलतान महमूद राजेंद्र प्रथम का समकालीन था। भारत में अपने अभियानों के दौरान उसने पराजित राजाओं के मंदिरों को अपवित्र किया तथा उनके धन और मूर्त्तियों को लूट लिया। उस समय सुलतान महमूद कोई बहुत महत्त्वपूर्ण शासक नहीं था, लेकिन मंदिरों को नष्ट करके—खास तौर से सोमनाथ का मंदिर—उसने एक महान इस्लामी योद्धा के रूप में श्रेय प्राप्त करने का प्रयास किया। मध्ययुगीन राजनीतिक संस्कृति में ज़्यादातर शासक अपने राजनैतिक बल व सैनिक सफलता का प्रदर्शन पराजित शासकों के उपासना स्थलों पर आक्रमण करके और उन्हें लूट कर करते थे।

?

राजेन्द्र प्रथम तथा महमूद ग़ज़नवी की नीतियाँ किन रूपों में समकालीन समय की देन थीं और किन रूपों में ये एक-दूसरे से भिन्न थीं?

बाग, मकबरे तथा किले

मुग़लों के अधीन वास्तुकला और अधिक जटिल हो गई। बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर और विशेष रूप से शाहजहाँ, साहित्य, कला और वास्तुकला

चित्र 9

मुग़ल चारबाग

(क) हुमायूँ के मकबरे का चारबाग, दिल्ली, 1562-71
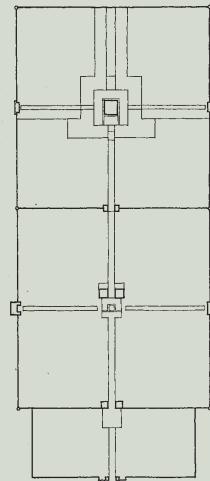
(ख) कश्मीर में शालीमार बाग का सीढ़ीदार चारबाग, 1620 और 1634
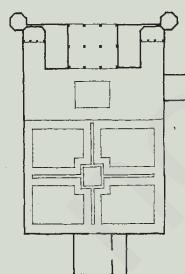
(ग) लालमहल बारी में चारबाग को तटीय बाग के रूप में अपनाया गया, 1637

में व्यक्तिगत रुचि लेते थे। अपनी आत्मकथा में बाबर ने औपचारिक बागों की योजनाओं और उनके बनाने में अपनी रुचि का वर्णन किया है। अकसर ये बाग दीवार से घिरे होते थे तथा कृत्रिम नहरों द्वारा चार भागों में विभाजित आयताकार अहाते में स्थित थे। औपचारिक बागों की योजनाओं और उनके बनाने तथा खाका तैयार करने में बाबर ने अपनी रुचि का वर्णन किया है।

चित्र 10
काबुल में चारबाग का खाका बनाते बाबर की 1590 की एक चित्रकारी। ध्यान दें, कैसे रास्ते पर एक दूसरे को काटती नहरें ,चारबाग योजना की विशेषता बनाती हैं।

चार समान हिस्सों में बँटे होने के कारण ये चारबाग कहलाते थे। चारबाग बनाने की परंपरा अकबर के समय से शुरू हुई। कुछ सर्वाधिक सुंदर चारबागों को कश्मीर, आगरा और दिल्ली (चित्र 9 देखें) में जहाँगीर और शाहजहाँ ने बनवाया था।

अकबर के शासनकाल में कई तरह के महत्त्वपूर्ण वास्तुकलात्मक नवाचार हुए। इनकी प्रेरणा अकबर के वास्तुशिल्पियों ने उसके मध्य एशियाई पूर्वज तैमूर के मक़बरों से ली। हुमायूँ के मक़बरे में सबसे पहली बार दिखने वाला केंद्रीय गुंबद, (जो बहुत ऊँचा था) और ऊँचा मेहराबदार प्रवेशद्वार (पिश्तक) मुग़ल वास्तुकला के महत्त्वपूर्ण रूप बन गए। यह मकबरा एक विशाल औपचारिक चारबाग के मध्य में स्थित था। इसका निर्माण 'आठ स्वर्गों' अथवा हश्त बिहिश्त की परंपरा में हुआ था, जिसमें एक केंद्रीय कक्ष, आठ कमरों से घिरा होता था। इस इमारत का निर्माण लाल बलुआ पत्थर से हुआ था तथा इसके किनारे सफ़ेद संगमरमर से बने थे।

चित्र 11
1562 व 1571 के बीच निर्मित हुमायूँ का मकबरा। क्या आप नहरों को देख सकते हैं?

चित्र 12
दिल्ली में दीवान-ए-आम में सिंहासन का छज्जा। इसका निर्माण 1648 में पूरा किया गया था।
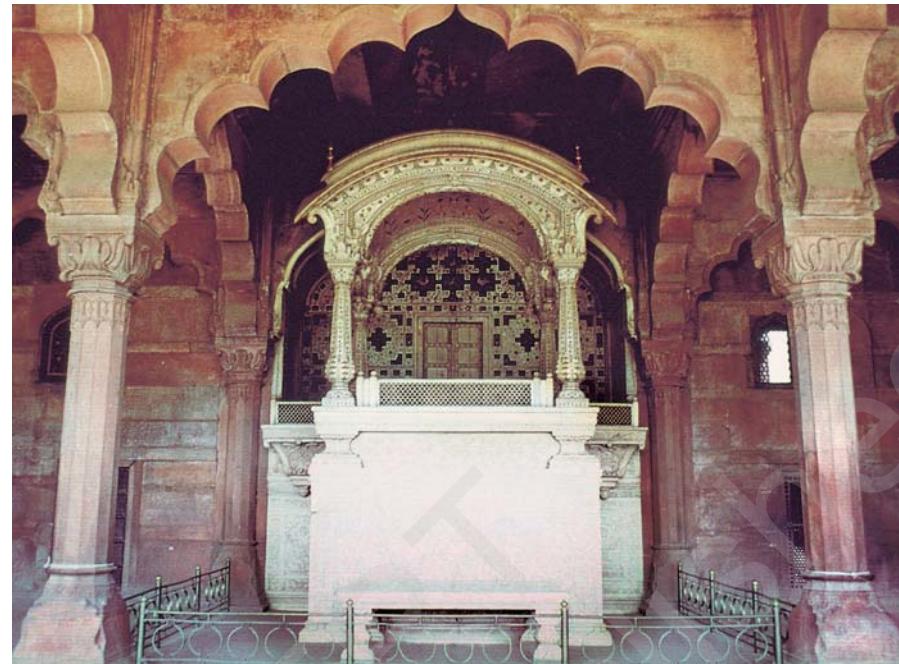
शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान मुगल वास्तुकला के विभिन्न तत्त्व एक विशाल सद्भावपूर्ण संश्लेषण में मिला दिए गए। शाहजहाँ के शासन में अनवरत निर्माण कार्य चलते रहे, विशेष रूप से आगरा और दिल्ली में। सार्वजनिक और व्यक्तिगत सभा हेतु समारोह कक्षों (दीवान-ए-खास और दीवान-ए-आम) की योजना बहुत सावधानीपूर्वक बनाई जाती थी। एक विशाल आँगन में स्थित ये दरबार *चिहिल सुतुन* अथवा चालीस खंभों के सभा भवन भी कहलाते थे।

शाहजहाँ के सभा भवन विशेष रूप से मसजिद से मिलते-जुलते बनाए गए थे। उसका सिंहासन जिस मंच पर रखा था उसे प्राय: किबला (नमाज़ के दौरान मुसलमानों के सामने की दिशा) कहा जाता था क्योंकि जिस समय दरबार चलता था, उस समय प्रत्येक व्यक्ति उस ओर ही मुँह करके बैठता था। इन वास्तुकलात्मक अभिलक्षणों का इस ओर इशारा था कि राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि था।

पितरा-दूरा
उत्कीर्णित संगमरमर अथवा बलुआ पत्थर पर रंगीन, ठोस पत्थरों को दबाकर बनाए गए सुंदर तथा अलंकृत नमूने।

शाहजहाँ ने दिल्ली के लालकिले के अपने नवनिर्मित दरबार में राजकीय न्याय और शाही दरबार के अंत:संबंध पर बहुत बल दिया। बादशाह के सिंहासन के पीछे **पितरा-दूरा** के जड़ाऊ काम की एक शृंखला बनाई गई थी, जिसमें पौराणिक यूनानी देवता आर्फियस को वीणा बजाते हुए चित्रित किया गया था। ऐसा माना जाता था कि आर्फियस का संगीत आक्रामक

जानवरों को भी शांत कर सकता है और वे शांतिपूर्वक एक-दूसरे के साथ रहने लगते हैं। शाहजहाँ के सार्वजनिक सभा भवन का निर्माण यह सूचित करता था कि न्याय करते समय राजा ऊँचे और निम्न सभी प्रकार के लोगों के साथ समान व्यवहार करेगा और सभी सद्भाव के साथ रह सकेंगे।

शासन के आरंभिक वर्षों में शाहजहाँ की राजधानी आगरा थी। इस शहर में विशिष्ट वर्गों ने अपने घरों का निर्माण यमुना नदी के तटों पर करवाया था। इनका निर्माण चारबाग की रचना के ही समान औपचारिक बागों के बीच में हुआ था। चारबाग की योजना के अंतर्गत ही अन्य तरह के बाग भी थे जिन्हें इतिहासकार 'नदी-तट-बाग' कहते हैं। इस तरह के बाग में निवासस्थान, चारबाग के बीच में स्थित न होकर नदी तटों के पास बाग के बिल्कुल किनारे पर होता था।

शाहजहाँ ने अपने शासन की भव्यतम वास्तुकलात्मक उपलब्धि ताजमहल के नक्शे में नदी-तट-बाग की योजना अपनाई। यहाँ सफ़ेद संगमरमर का मकबरा नदी तट के एक चबूतरे पर तथा बाग इसके दक्षिण में बनाया गया था। नदी पर सभी अभिजातों की पहुँच पर नियंत्रण हेतु शाहजहाँ ने इस वास्तुकलात्मक रूप को विकसित किया। दिल्ली में शाहजहाँनाबाद में उसने जो नया शहर निर्मित करवाया उसमें शाही महल नदी पर स्थित था। केवल विशिष्ट कृपा प्राप्त अभिजातों, जैसे—उसके बड़े बेटे दाराशिकोह को ही नदी
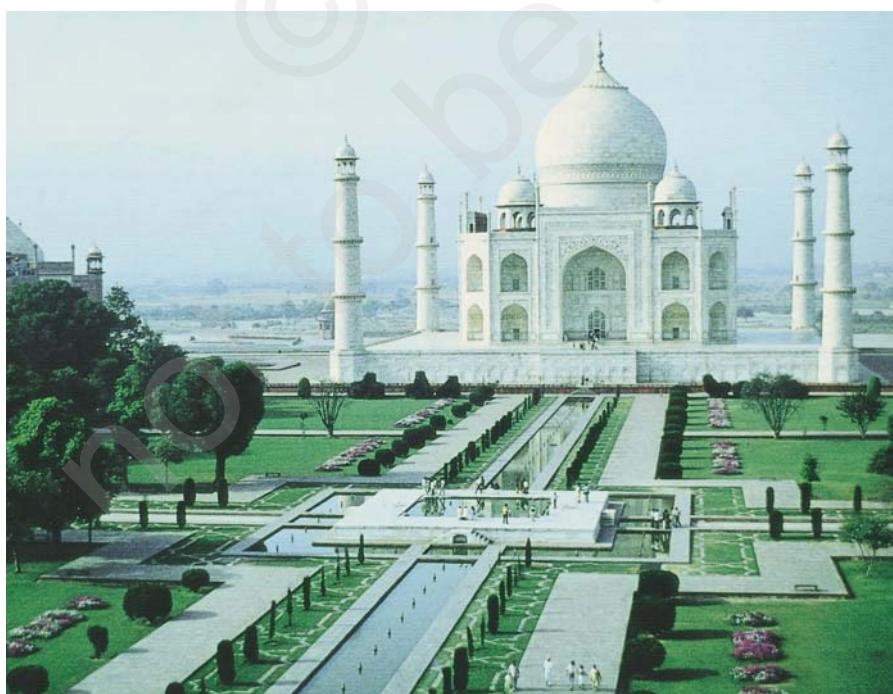
चित्र 13
आगरा का ताजमहल, जिसका निर्माण 1643 में पूरा हुआ।

चित्र 14

एक नक्शे से आगरा के नदी तट-बाग-शहर का पुनर्कल्पित दृश्य। ध्यान दें कि कैसे यमुना के दोनों तटों पर अभिजातों के बाग-महल स्थित हैं। ताजमहल बाईं ओर है। चित्र 15 में दी गई दिल्ली के शाहजहाँनाबाद की योजना की तुलना आगरा की योजना से करें।
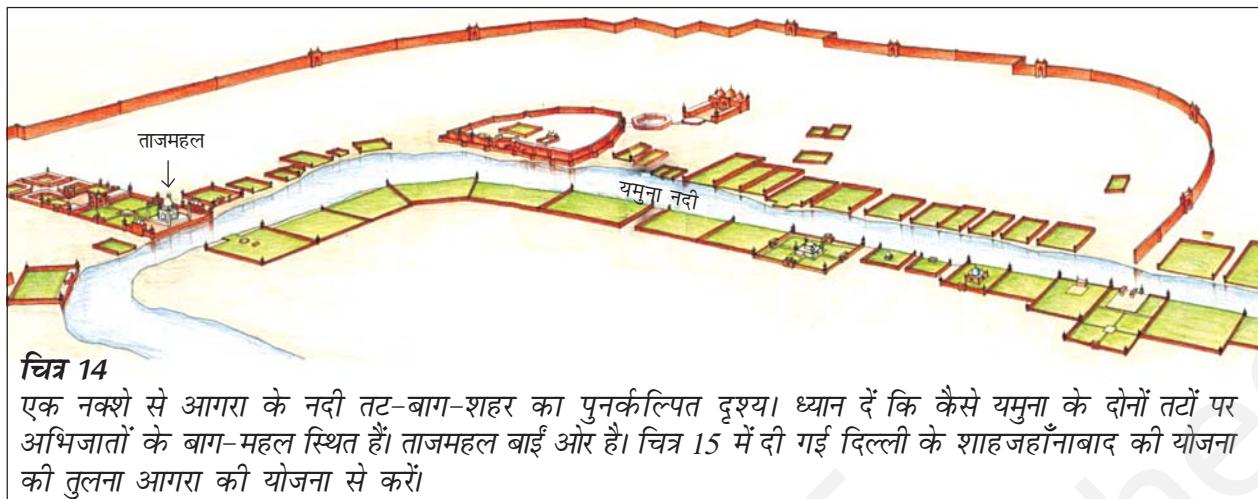
यमुना नदी

चित्र 15

1850 का शाहजहाँनाबाद का एक नक्शा। बादशाह का निवास कहाँ है? शहर काफ़ी घना बसा हुआ लगता है, लेकिन क्या आपको यहाँ कई बड़े बाग भी दिखाई देते हैं? क्या आप मुख्य मार्ग व जामी मसजिद ढूँढ सकते हैं?

तक पहुँच मिली थी। अन्य सभी को अपने घरों का निर्माण यमुना नदी से दूर, शहर में करवाना पड़ता था।

क्षेत्र व साम्राज्य

आठवीं व अठारहवीं शताब्दियों के बीच जब निर्माण संबंधी गतिविधियों में बढ़ोतरी हुई, तो विभिन्न क्षेत्रों के बीच विचारों का भी पर्याप्त आदान-प्रदान हुआ। एक क्षेत्र की परंपराएँ दूसरे क्षेत्र द्वारा अपनाई गईं। उदाहरण के लिए, विजयनगर में राजाओं की गजशालाओं पर बीजापुर और गोलकुंडा जैसी आस-पास की सल्तनतों की वास्तुकलात्मक शैली का बहुत प्रभाव पड़ा था (अध्याय 6 देखें)। मथुरा के निकट स्थित वृंदावन में बने मंदिरों की वास्तुकलात्मक शैली फतेहपुर सीकरी के मुग़ल महलों से बहुत मिलती-जुलती थी।

विशाल साम्राज्यों के निर्माण ने विभिन्न क्षेत्रों को उनके शासन के अधीन ला दिया। इससे कलात्मक रूपों व वास्तुकलात्मक शैलियों के परसंसेचन में

चित्र 16
वृंदावन में गोविंददेव के मंदिर का अंदरूनी भाग, 1590
इस मंदिर का निर्माण लाल बलुआ पत्थर से हुआ था। दो (चार में से) प्रतिच्छेदी मेहराबों पर ध्यान दें, जिनसे इसकी ऊँची भीतरी छत का निर्माण किया था। वास्तुकला की यह शैली उत्तर-पूर्वी ईरान (खुरासान) से आई और फतेहपुर सीकरी में इसका प्रयोग किया गया था।

मदद मिली। मुग़ल शासक अपने भवनों के निर्माण में क्षेत्रीय वास्तुकलात्मक शैली अपनाने में विशेष रूप से दक्ष थे। उदाहरण के लिए, बंगाल में स्थानीय शासकों ने छप्पर की झोंपड़ी के समान दिखने वाली छत का निर्माण करवाया। मुग़लों को यह 'बांग्ला गुंबद' (अध्याय 9 में चित्र 11 और 12 देखें) इतना पसंद आया था कि उन्होंने अपनी वास्तुकला में इसका प्रयोग किया। अन्य क्षेत्रों का प्रभाव भी स्पष्ट था। अकबर की राजधानी फतेहपुर सीकरी की कई इमारतों पर गुजरात व मालवा की वास्तुकलात्मक शैलियों का प्रभाव दिखता है।
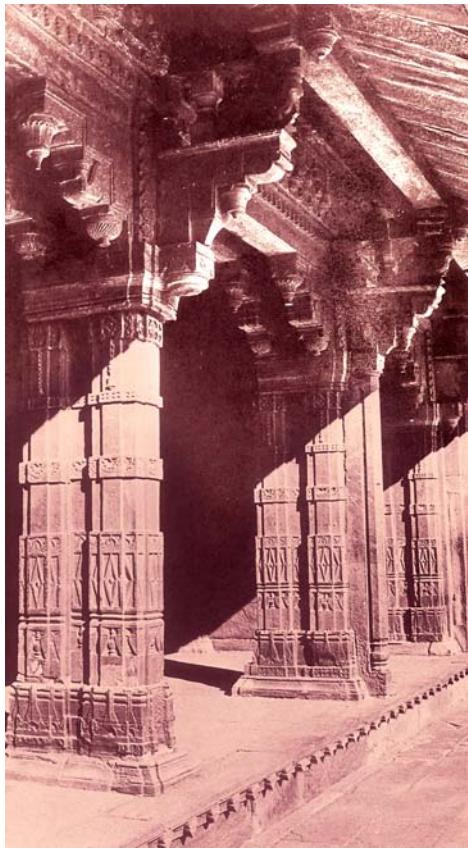
अठारहवीं शताब्दी से मुग़ल शासकों की सत्ता के धूमिल हो जाने के बाद भी उनके आश्रय में विकसित वास्तुकलात्मक शैली निरंतर प्रयोग में रही तथा अन्य शासकों ने, जब भी स्वयं के राज्य स्थापित करने के प्रयास किए, यह शैली अपनाई।

चित्र 17
फतेहपुर सीकरी के जोधाबाई महल में छत के विस्तार को संभालते अलंकृत स्तंभ तथा टेक। ये गुजरात क्षेत्र की वास्तुकलात्मक परंपराओं से प्रभावित हैं।

अन्यत्र
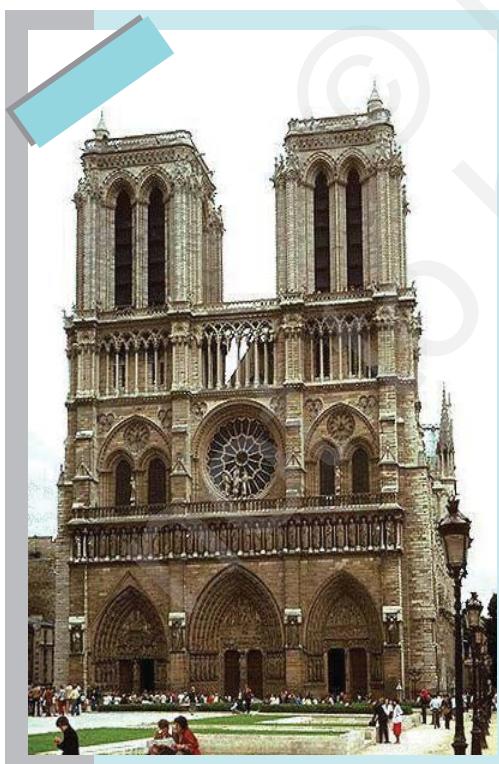
आसमान छूते चर्च

बारहवीं शताब्दी से फ्रांस में आरंभिक भवनों की तुलना में अधिक ऊँचे व हलके चर्चों के निर्माण के प्रयास शुरू हुए। वास्तुकला की यह शैली 'गोथिक' नाम से जानी जाती है। इस शैली की विशिष्टताएँ हैं—नुकीले ऊँचे मेहराब, रंगीन काँच का प्रयोग, जिसमें प्राय: बाइबिल से लिए गए दृश्यों का चित्रण है तथा उड़ते हुए पुश्ते। दूर से ही दिखने वाली ऊँची मीनारें और घंटी वाले बुर्ज़ बाद में चर्च से जुड़े।

इस वास्तुकलात्मक शैली के सर्वोत्कृष्ट ज्ञात उदाहरणों में से एक पेरिस का नाट्रेडम चर्च है। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दियों के कई दशकों में इसका निर्माण हुआ।

? *चित्र पर एक नज़र डालें और घंटी वाले बुर्ज़ों को पहचानने की कोशिश करें।*

कल्पना करें

आप एक शिल्पकार हैं और ज़मीन से पचास मीटर की ऊँचाई पर बाँस और रस्सी की सहायता से बनाए गए लकड़ी के एक छोटे से प्लेटफॉर्म पर खड़े हैं। आपको क़ुत्बमीनार के पहले छज्जे के नीचे एक अभिलेख लगाना है। आप यह कार्य कैसे करेंगे?

फिर से याद करें

1. वास्तुकला का 'अनुप्रस्थ टोडा निर्माण' सिद्धांत 'चापाकार' सिद्धांत से किस तरह भिन्न है।

2. 'शिखर' से आपका क्या तात्पर्य है?

3. 'पितरा-दूरा' क्या है?

4. एक मुग़ल चारबाग की क्या खास विशेषताएँ हैं?

आइए समझें

5. किसी मंदिर से एक राजा की महत्ता की सूचना कैसे मिलती थी?

6. दिल्ली में शाहजहाँ के दीवान-ए-खास में एक अभिलेख में कहा गया है– 'अगर पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है?' यह धारणा कैसे बनी?

7. मुग़ल दरबार से इस बात का कैसे संकेत मिलता था कि बादशाह से धनी, निर्धन, शक्तिशाली, कमज़ोर सभी को समान न्याय मिलेगा?

8. शाहजहाँनाबाद में नए मुग़ल शहर की योजना में यमुना नदी की क्या भूमिका थी?

बीज शब्द

पूरे पाठ को पढ़कर छह शब्दों की एक सूची बनाएँ।

इनमें प्रत्येक के लिए, यह बताते हुए कि आपने उस शब्द का चुनाव क्यों किया है, एक वाक्य लिखें।

आइए विचार करें

9. आज धनी और शक्तिशाली लोग विशाल घरों का निर्माण करवाते हैं। अतीत में राजाओं तथा उनके दरबारियों के निर्माण किन मायनों में इनसे भिन्न थे?

10. चित्र 4 पर नज़र डालें। यह इमारत आज कैसे तेज़ी से बनवाई जा सकती है?

आइए करके देखें

11. पता लगाएँ कि क्या आपके गाँव या कस्बे में किसी महान व्यक्ति की कोई प्रतिमा अथवा स्मारक है? इसे वहाँ क्यों स्थापित किया गया था? इसका प्रयोजन क्या है?

12. अपने आस-पास के किसी पार्क या बाग की सैर करके उसका वर्णन करें। किन मायनों में ये मुग़ल बागों के समान अथवा भिन्न हैं?

6 नगर, व्यापारी और शिल्पीजन

एक मध्ययुगीन नगर की यात्रा पर आया कोई यात्री, उस नगर के बारे में कैसी आकांक्षाएँ रखता होगा? यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह नगर किस प्रकार का था–क्या वह एक मंदिर नगर था या एक प्रशासनिक केंद्र, एक वाणिज्यिक शहर, एक पत्तन नगर अथवा किसी अन्य प्रकार का शहर था। वस्तुत: कई नगर तो एक साथ अनेक प्रकार के थे–वे प्रशासनिक नगर तथा मंदिर नगर होने के साथ-साथ वाणिज्यिक कार्यकलापों और शिल्प उत्पादन के केंद्र भी थे।
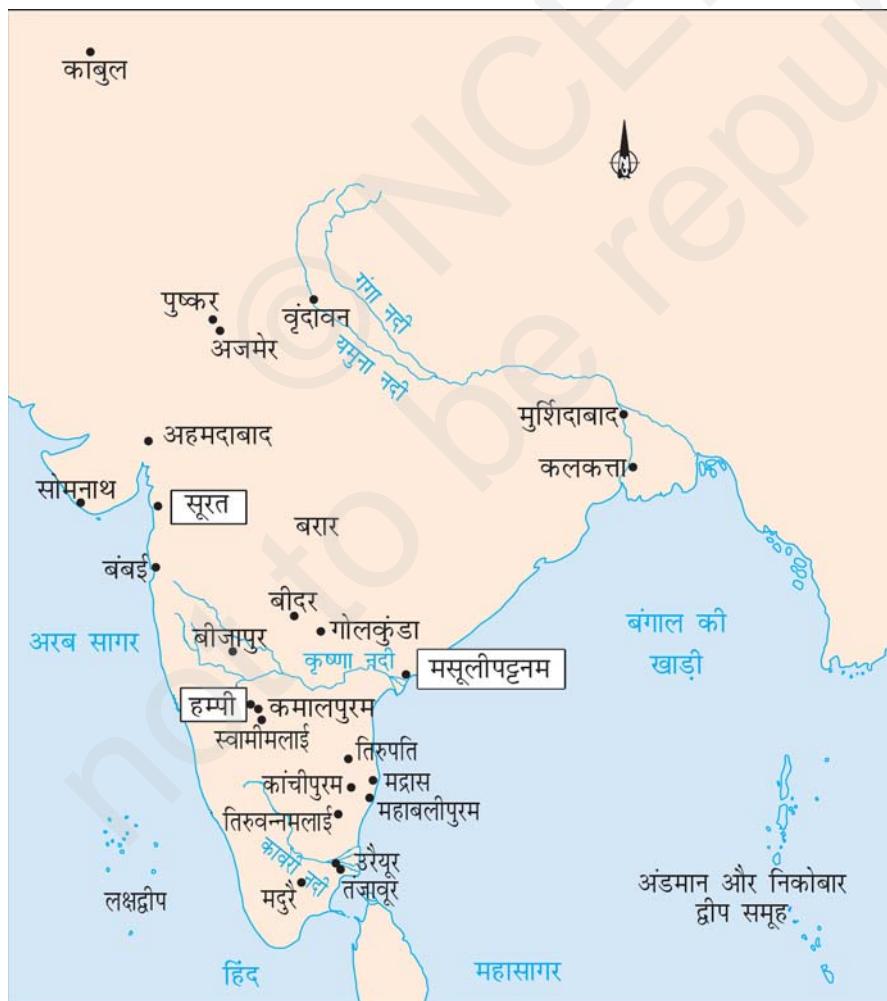
मानचित्र 1
मध्य और दक्षिण भारत में व्यापार और शिल्पकारी उत्पादन के कुछ प्रमुख केंद्र

प्रशासनिक केंद्र

अध्याय 2 में आपने चोल वंश के बारे में पढ़ा। आइए, हम अपनी कल्पना के घोड़े पर सवार होकर चोल राजाओं की राजधानी तंजावूर, जैसाकि वह एक हज़ार वर्ष पहले था, की यात्रा पर चलें।

वर्ष में बारहों महीने बहने वाली कावेरी नदी इस सुंदर नगर के पास बहती है। राजा राजराज चोल द्वारा निर्मित राजराजेश्वर मंदिर की घंटियाँ बजती हुई सुनाई देती हैं। लोग नगर के वास्तुकार कुंजरमल्लन राजराज पेरूथच्चन की वास्तुकला की प्रशंसा करते हुए नहीं थकते। हमें वास्तुकार का नाम इसलिए पता है क्योंकि उसने गर्व से अपने नाम को मंदिर की दीवार पर उत्कीर्ण किया। मंदिर के भीतर एक विशाल शिवलिंग स्थापित है।

इस मंदिर के अलावा नगर में अनेक राजमहल हैं, जिनमें कई मंडप बने हुए हैं। राजा लोग इन मंडपों में अपना दरबार लगाते हैं। यहीं से वे अपने अधीनस्थों के लिए आदेश जारी करते हैं। नगर में सैन्य शिविर भी बने हैं।

नगर उन बाज़ारों की हलचल से भरा हुआ है; जहाँ अनाज, मसालों, कपड़ों और आभूषणों की बिक्री हो रही है। नगर के लिए जल की आपूर्ति कुँओं और तालाबों से होती है। तंजावूर और उसके निकटवर्ती नगर उरैयूर के सालीय बुनकर मंदिर के उत्सव के लिए झंडे-झंडियाँ बनाने का कपड़ा, राजा और अभिजात वर्ग के लिए बढ़िया सूती वस्त्र और जनसाधारण के लिए मोटा सूती वस्त्र तैयार कर रहे हैं। यहाँ से कुछ दूरी पर स्वामीमलाई में स्थपति अथवा मूर्तिकार उत्तम काँस्य मूर्तियाँ तथा लंबे, सुंदर घंटा-धातु के दीप बना रहे हैं।

?

आपके मत में लोग तंजावूर को एक महान नगर क्यों मानते थे?

मंदिर नगर और तीर्थ केंद्र

तंजावूर एक मंदिर नगर का भी उदाहरण है। मंदिर नगर नगरीकरण का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रतिरूप प्रस्तुत करते हैं। नगरीकरण नगरों के विकास की प्रक्रिया है। मंदिर अकसर समाज और अर्थव्यवस्था दोनों के लिए ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते थे। शासक, विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति अपना भक्ति भाव दर्शाने के लिए मंदिर बनाते थे। वे मंदिरों को भूमि एवं धन अनुदान में देते थे जिनकी आय से धार्मिक अनुष्ठान, विधि-विधान से संपन्न किए जाते थे, तीर्थयात्रियों तथा पुरोहित-पंडितों को भोजन कराया जाता था और पर्वोत्सव मनाए जाते थे। मंदिर के दर्शनार्थी भी दान-दक्षिणा दिया करते थे।

काँसा, घंटा-धातु और 'लुप्तमोम' तकनीक

काँसा एक मिश्रधातु होती है, जो ताँबे और राँगे (टिन) के मेल से बनती है। घंटा-धातु में राँगे का अनुपात किसी भी अन्य किस्म के काँसे से अधिक होता है। यह घंटे जैसी ध्वनि उत्पन्न करती है।

चोलकालीन कांस्य मूर्तियाँ (अध्याय-2 देखें) 'लुप्तमोम' तकनीक से बनाई जाती थीं। इस प्रविधि के अंतर्गत सर्वप्रथम मोम की एक प्रतिमा बनाई जाती थी। इसे चिकनी मिट्टी से पूरी तरह लीप कर सूखने के लिए छोड़ दिया जाता था। जब वह पूरी तरह सूख जाती थी तो उसे गर्म किया जाता था और उसके मिट्टी के आवरण में एक छोटा-सा छेद बना कर उस छेद के रास्ते सारा पिघला हुआ मोम बाहर निकाल लिया जाता था। फिर चिकनी मिट्टी के खाली साँचे में उसी छेद के रास्ते पिघली हुई धातु भर दी जाती थी। जब वह धातु ठंडी होकर ठोस हो जाती थी, तो चिकनी मिट्टी के आवरण को सावधानीपूर्वक हटा दिया जाता था और उसमें से निकली प्रतिमा को साफ़ करके चमका दिया जाता था।

आपके विचार से इस प्रविधि के प्रयोग के क्या-क्या लाभ थे?

चित्र 1
कांस्य मूर्ति, जिसमें कृष्ण को नाग-राक्षस कालिया को काबू करते दिखाया गया है।

मंदिर के कर्ता-धर्ता मंदिर के धन को व्यापार एवं साहूकारी में लगाते थे। शनैः शनैः, समय के साथ, बड़ी संख्या में पुरोहित-पुजारी, कामगार, शिल्पी, व्यापारी आदि मंदिर तथा उसके दर्शनार्थियों एवं तीर्थयात्रियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मंदिर के आस-पास बसते गए। इस प्रकार मंदिर नगरों का विकास हुआ। इसी रीति से मंदिरों के चारों ओर अनेक नगरों का आर्विभाव हुआ, जैसे–मध्य प्रदेश में भिल्लस्वामिन (भीलसा या विदिशा) और गुजरात में सोमनाथ। कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण मंदिर नगर–तमिलनाडु में कांचीपुरम तथा मदुरै और आंध्र प्रदेश में तिरुपति हैं।

तीर्थस्थल भी धीरे-धीरे नगरों के रूप में विकसित हो गए। वृंदावन (उत्तर प्रदेश) और तिरुवन्नमलाई (तमिलनाडु) ऐसे नगरों के दो उदाहरण हैं। अजमेर (राजस्थान), बारहवीं शताब्दी में चौहान राजाओं की राजधानी था और आगे चलकर मुग़लों के शासन में वह 'सूबा' मुख्यालय बन गया। यह नगर धार्मिक सह-अस्तित्व का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। सुप्रसिद्ध सूफ़ी संत ख्वाज़ा मुइनुद्दीन चिश्ती (अध्याय 8 भी देखें) यहाँ बारहवीं शताब्दी में बस गए थे और उनके दर्शनार्थी एवं श्रद्धालु सभी

पंथों-मतों के हुआ करते थे। अजमेर के पास ही पुष्कर सरोवर है, जहाँ प्राचीनकाल से ही तीर्थयात्री आते रहे हैं।

?

अपने ज़िले के नगरों की सूची बनाएँ और उनका प्रशासनिक केंद्रों, मंदिर नगरों/तीर्थ केंद्रों के रूप में वर्गीकरण करें।

छोटे नगरों का संजाल

आठवीं शताब्दी से ही उपहाद्वीप में अनेक छोटे-छोटे नगरों का संजाल-सा बिछने लगा था। संभवत: उनका प्रादुर्भाव बड़े-बड़े गाँवों से हुआ था। उनमें आमतौर पर एक मंडपिका (बाद में जिसे 'मंडी' कहा जाने लगा) होती थी, जहाँ आस-पास के गाँव वाले अपनी उपज बेचने के लिए लाते थे। उनमें ऐसी गलियाँ थीं, जहाँ दुकानें एवं बाज़ार थे जिन्हें 'हट्ट' (बाद में 'हाट' कहा जाने लगा) कहा जाता था। इसके अलावा भिन्न-भिन्न प्रकार के कारीगरों तथा शिल्पियों, जैसे-कुम्हारों, तेलियों, शक्कर बनाने वालों, ताड़ी बनाने वालों, सुनारों, लोहारों, पत्थर तोड़ने वालों आदि के अलग-अलग बाज़ार होते थे। कुछ व्यापारी तो नगर में स्थायी रूप से बसकर अपना कारोबार करते थे, जबकि कुछ अन्य व्यापारी नगर-नगर घूमकर क्रय-विक्रय किया करते थे। आस-पास और दूरदराज़ के व्यापारी इन नगरों में स्थानीय उपज खरीदने और दूरवर्ती स्थानों के उत्पाद, जैसे-घोड़े, नमक, कपूर, केसर, पान-सुपारी और काली मिर्च जैसे मसाले बेचने के लिए आते थे।

चित्र 2
नगर का एक बाज़ार

आमतौर पर कोई सामंत यानी परवर्ती काल का ज़मींदार इन नगरों में या इनके आस-पास किलेबंदी कर महल बना लेता था। ऐसे सामंत व्यापारियों, शिल्पकारों तथा उनके व्यापार की वस्तुओं पर कर लगाते थे और कभी-कभी इन करों के संग्रहण का 'अधिकार' उन स्थानीय मंदिरों को 'प्रदान' कर देते थे, जिनका निर्माण स्वयं उनके द्वारा या धनाढ्य व्यापारियों द्वारा कराया गया होता था। ऐसे 'अधिकारों' का उल्लेख अभिलेखों में किया गया है जो आज भी पाए जाते हैं।

चित्र 3
लकड़ी पर नक्काशी करता हुआ एक कारीगर

बाज़ारों पर कर

यह राजस्थान से प्राप्त एक दसवीं शताब्दी के अभिलेख का सारांश है। जिसमें वे शुल्क दिए गए हैं जो मंदिर प्राधिकारियों द्वारा वस्तुओं के रूप में वसूल किए जा सकते हैं।

शक्कर और गुड़, रंग, धागा, रुई, नारियल, नमक, सुपारी, मक्खन, तिल के तेल पर और कपड़े पर कर लगाए जाते थे।

इसके अलावा, व्यापरियों पर, धातु की चीजें बेचने वालों, आसवकों, तेल, पशुचारे और अनाज के बोरों पर भी कर लगाए जाते थे।

इनमें से कुछ कर तो वस्तु रूप में और कुछ अन्य नकद रूप में वसूले जाते थे।

? *आज बाज़ार पर लगने वाले करों के बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करें–इन्हें कौन इकट्ठा करता है, वे किस प्रकार वसूल किए जाते हैं और उनका प्रयोग किस काम के लिए होता है।*

बड़े और छोटे व्यापारी

व्यापारी कई प्रकार के हुआ करते थे। उनमें बंजारे लोग (देखिए अध्याय 7) भी शामिल थे। कई व्यापारी, विशेष रूप से घोड़ों के व्यापारी अपने संघ बनाते थे, जिनका एक मुखिया होता था और वह मुखिया उनकी ओर से घोड़े खरीदने के इच्छुक योद्धाओं से बातचीत करता था।

चूँकि व्यापारियों को अनेक राज्यों तथा जंगलों से होकर गुज़रना पड़ता था। इसलिए वे आमतौर पर काफ़िले बनाकर एक साथ यात्रा करते थे और अपने हितों की रक्षा के लिए व्यापार-संघ (गिल्ड) बनाते थे। दक्षिण भारत

में आठवीं शताब्दी और परवर्ती काल में अनेक ऐसे संघ थे। उनमें सबसे प्रसिद्ध 'मणिग्रामम्' और 'नानादेशी' थे। ये व्यापार संघ प्रायद्वीप के भीतर और दक्षिण-पूर्व एशिया तथा चीन के साथ भी दूर-दूर तक व्यापार करते थे।

इनके अलावा चेट्टियार और मारवाड़ी ओसवाल जैसे समुदाय भी थे, जो आगे चलकर देश के प्रधान व्यापारी समूह बन गए। गुजराती व्यापारियों में हिंदू बनिया और मुस्लिम बोहरा दोनों समुदाय शमिल थे। वे दूर-दूर तक लाल सागर के बंदरगाहों व फ़ारस की खाड़ी, पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया तथा चीन से व्यापार करते थे। वे इन पत्तनों में कपड़े और मसाले बेचते थे और बदले में अफ्रीका से सोना और हाथी दाँत एवं दक्षिण-पूर्व एशिया और चीन से मसाले, टिन, मिट्टी के नीले बर्तन और चाँदी लाते थे।

पश्चिमी तट के नगरों में अरबी, फ़ारसी, चीनी, यहूदी और सीरियाई ईसाई बस गए थे। लाल सागर के बंदरगाहों में बेचे जाने वाले भारतीय मसाले और कपड़े इतालवी व्यापारियों द्वारा खरीदे जाते थे और वहाँ से वे उन्हें आगे यूरोपीय बाज़ारों में पहुँचाते थे। उनसे व्यापार में बहुत लाभ होता था। उष्णकटिबंधीय जलवायु में उगाए जाने वाले मसाले (कालीमिर्च, दालचीनी, जायफल, सोंठ आदि) यूरोपीय व्यंजनों के महत्त्वपूर्ण अंग बन गए थे और भारतीय सूती कपड़ा बहुत लुभावना होता था। ये चीज़ें ही यूरोपीय व्यापारियों को भारत तक खींच लाईं। समय के साथ-साथ व्यापार और नगरों का रूप किस प्रकार बदला, इसके बारे में हम शीघ्र आगे पढ़ेंगे।

?

जैसा कि आप समझ सकते हैं, इस काल के दौरान लोगों तथा माल का आना-जाना लगा ही रहता था। आपके विचार से इस आवाजाही का नगरों तथा गाँवों के जन-जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा होगा? नगरों में रहने वाले कारीगरों की सूची बनाएँ।

काबुल

काबुल अपने पहाड़ी और विषम भू-दृश्य के साथ सोलहवीं शताब्दी से राजनीतिक और वाणिज्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बन गया। काबुल और कांधार सुप्रसिद्ध रेशम मार्ग से जुड़े हुए थे। साथ ही घोड़ों का व्यापार भी मुख्य रूप से इसी मार्ग से होता था। सत्रहवीं शताब्दी में हीरों के एक सौदागर जौं बेपटिस्टे टैवर्नियर ने अनुमान लगाया था कि काबुल में घोड़ों का व्यापार प्रतिवर्ष 30,000 रूपयों का होता था, जो उन दिनों में एक बड़ी भारी रकम समझी जाती थी। काबुल से मेवे, खजूर, गलीचे, रेशमी कपड़े और ताज़े फल ऊँटों पर लाद कर लाए जाते थे और उपमहाद्वीप तथा अन्य भागों में बेचे जाते थे। इनके अलावा गुलाम भी बिक्री के लिए लाए जाते थे।

नगरों में शिल्प

बीदर के शिल्पकार ताँबे तथा चाँदी में जड़ाई के काम के लिए इतने अधिक प्रसिद्ध थे कि इस शिल्प का नाम ही 'बीदरी' पड़ गया। पांचाल अर्थात् विश्वकर्मा समुदाय जिसमें सुनार, कसेरे, लोहार, राजमिस्त्री और बढ़ई शामिल थे; मंदिरों के निर्माण के लिए आवश्यक थे। इसके अलावा वे राजमहलों, बड़े-बड़े भवनों, तालाबों और जलाशयों के निर्माण में भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। इसी प्रकार सालियार या कैक्कोलार जैसे बुनकर भी समृद्धिशाली समुदाय बन गए थे और वे मंदिरों को भारी दान-दक्षिणा दिया करते थे। वस्त्र-निर्माण से संबंधित कुछ अन्य कार्य, जैसे-कपास को साफ़ करना, कातना और रंगना भी स्वतंत्र व्यवसाय बन गए थे, जिनके लिए विशेषज्ञता की आवश्यकता होती थी।

चित्र 4
पीतल के इस मोमबत्तीदान पर काला आवरण है।
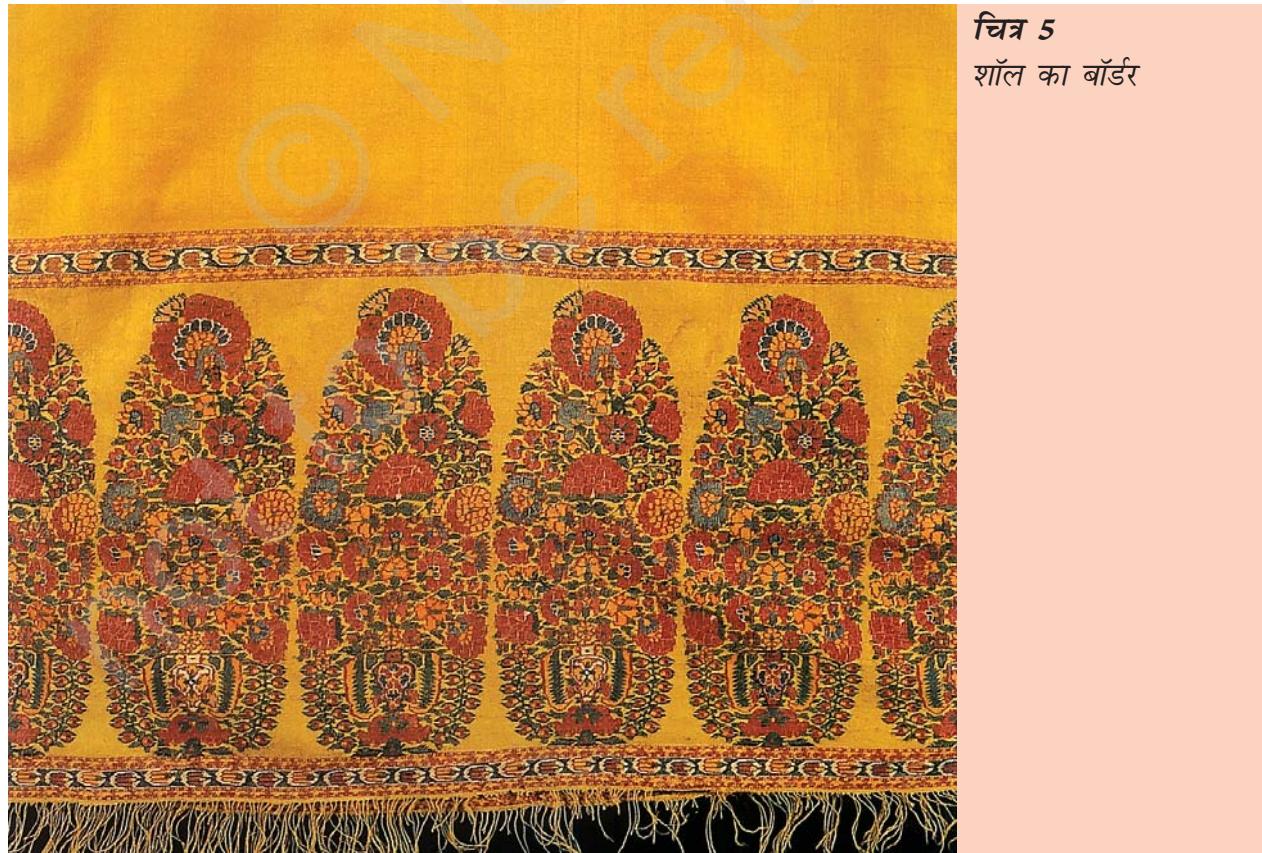
चित्र 5
शॉल का बॉर्डर

शहरों के बदलते हुए भाग्य

कई शताब्दियों के लंबे समय में अहमदाबाद (गुजरात) जैसे कुछ नगर बड़े व्यापारिक केंद्रों के रूप में विकसित हो गए, लेकिन तंजावूर जैसे कुछ अन्य नगर पहले की अपेक्षा विस्तार तथा महत्त्व की दृष्टि से सिकुड़ गए। इसी काल में पश्चिम बंगाल में भागीरथी नदी के तट पर स्थित मुर्शिदाबाद रेशमी वस्त्रों के प्रमुख केंद्र के रूप में उभरा था। वह 1704 ई. में बंगाल की राजधानी बन गया लेकिन इसी शताब्दी के दौरान उसका सितारा डूब गया; क्योंकि वहाँ के बुनकर इंग्लैंड की मिलों से बनकर आए सस्ते कपड़े के साथ प्रतियोगिता में टिक न सके।

हम्पी, मसूलीपट्टनम और सूरत – नज़दीक से एक नज़र

हम्पी की वास्तुकला का सौंदर्य

हम्पी नगर, कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों की घाटी में स्थित है। यह नगर 1336 में स्थापित विजयनगर साम्राज्य का केंद्र स्थल था। हम्पी के शानदार खंडहरों से पता चलता है कि उस शहर की किलेबंदी उच्च कोटि की थी। किले की दीवारों के निर्माण में कहीं भी गारे-चूने जैसे किसी भी जोड़ने वाले मसाले का प्रयोग नहीं किया गया था और शिलाखंडों को आपस में फँसाकर गूँथा गया था।

चित्र 6
हम्पी के अहाते की टूटी हुई दीवार से बुर्ज का दृश्य

एक किलाबंद नगर

एक पुर्तगाली यात्री डोमिंगों पेज़ ने सोलहवीं शताब्दी में हम्पी नगर का वर्णन इस प्रकार किया:

...गोवा से आने वाले लोग जिस प्रवेश द्वार से गुज़रते हैं उस द्वार के भीतर राजा ने एक अत्यंत सुदृढ़ प्राचीरबद्ध नगर बसा रखा है; जो दीवारों और बुर्जों से सुरक्षित है। ये दीवारें अन्य नगरों की दीवारों जैसी नहीं हैं, बल्कि बहुत मज़बूत राजगीरी का ऐसा नमूना हैं; जो अन्य भागों में बहुत कम देखने को मिलेगा। उसके भीतर उसी रीति से बनाए गए भवनों की अत्यंत सुंदर कतारें हैं, जिनकी छतें सपाट चपटी हैं।

? *आपके विचार से यही नगर किलेबंद क्यों था?*

हम्पी की वास्तुकला विशिष्ट प्रकार की थी। वहाँ के शाही भवनों में भव्य मेहराब और गुंबद थे। वहाँ स्तंभों वाले कई विशाल कक्ष थे, जिनमें मूर्त्तियों को रखने के लिए आले बने हुए थे। वहाँ सुनियोजित बाग-बगीचे भी थे, जिनमें कमल और टोडों की आकृति वाले मूर्तिकला के नमूने थे। पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दियों के अपने समृद्धिकाल में हम्पी कई वाणिज्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से गुंजायमान रहता था। उन दिनों हम्पी के बाज़ारों में मूरों (मुस्लिम सौदागरों के लिए सामूहिक रूप से प्रयुक्त नाम), चेट्टियों और पुर्तगालियों जैसे यूरोपीय व्यापारियों के एजेंटों का जमघट लगा रहता था।

चित्र 7
हम्पी के विठ्ठल मंदिर का पत्थर का बना रथ

मंदिर सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र होते थे और देवदासियाँ विरूपाक्ष (शिव) मंदिर के अनेक स्तंभ वाले विशाल कक्षों में देव प्रतिमा, राजा तथा प्रजाजनों के समक्ष नृत्य किया करती थीं। महानवमी पर्व, जो आज दक्षिण में नवरात्रि पर्व कहलाता है, उन दिनों हम्पी में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पर्व माना जाता था। पुरातत्त्वविदों ने उस महानवमी मंच को खोज निकाला है, जहाँ राजा अपने

अतिथियों का स्वागत-सत्कार करता था और अधीनस्थ व्यक्तियों से नज़राने-उपहार लिया करता था। वहीं विराजमान होकर राजा, नृत्य एवं संगीत तथा मल्लयुद्ध के कार्यक्रम भी देखा करता था।

1565 में दक्कनी सुल्तानों–गोलकुंडा, बीजापुर, अहमदनगर, बरार और बीदर के शासकों–के हाथों विजयनगर की पराजय के बाद हम्पी का विनाश हो गया।

सूरत – पश्चिम का प्रवेश द्वार

वाणिज्य केंद्र
एक ऐसा स्थान जहाँ विभिन्न उत्पादन केंद्रों से आने वाला माल खरीदा और बेचा जाता है।

सूरत, मुग़लकाल में कैंबे (आज के खंबात) और कुछ समय बाद के अहमदाबाद के साथ-साथ, गुजरात में पश्चिमी व्यापार का वाणिज्य केंद्र बन गया। सूरत ओरमुज़ की खाड़ी से होकर पश्चिमी एशिया के साथ व्यापार करने के लिए मुख्य द्वार था। सूरत को मक्का का प्रस्थान द्वार भी कहा जाता था, क्योंकि बहुत-से हज़यात्री, जहाज़ से यहीं से रवाना होते थे।

सूरत एक सर्वदेशीय नगर था, जहाँ सभी जातियों और धर्मों के लोग रहते थे। सत्रहवीं शताब्दी में वहाँ पुर्तगालियों, डचों और अँग्रेज़ों के कारखाने एवं मालगोदाम थे। अँग्रेज़ इतिहासकार ओविंगटन ने 1689 में सूरत बंदरगाह का वर्णन करते हुए लिखा है कि किसी भी एक वक्त पर भिन्न-भिन्न देशों के औसतन एक सौ जहाज़ इस बंदरगाह पर लंगर डाले खड़े देखे जा सकते थे।

हुंडी
एक ऐसा दस्तावेज़, जिसमें एक व्यक्ति द्वारा जमा कराई गई रकम दर्ज रहती है। हुंडी को कहीं अन्यत्र प्रस्तुत करके जमा की गई राशि प्राप्त की जा सकती है।

सूरत में ऐसी अनेक दुकानें थीं जो सूती कपड़ा, थोक और फुटकर कीमतों पर बेचती थीं। सूरत के वस्त्र अपने सुनहरे गोटा-किनारियों (ज़री) के लिए प्रसिद्ध थे और उनके लिए पश्चिम एशिया, अफ्रीका और यूरोप में बाज़ार उपलब्ध थे। राज्य ने विश्व के सभी भागों से नगर में आने वाले लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक विश्रामगृह बना रखे थे। वहाँ भव्य भवन और असंख्य मनोरंजक-स्थल थे। सूरत में काठियावाड़ी सेठों तथा महाजनों की बड़ी-बड़ी साहूकारी कंपनियाँ थीं। उल्लेखनीय है कि सूरत से जारी की गई **हुंडियों** को दूर-दूर तक मिस्र में काहिरा, इराक में बसरा और बेल्जियम में एंटवर्प के बाज़ारों में मान्यता प्राप्त थी।

किंतु, सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में सूरत का भी अध:पतन प्रारंभ हो गया। इसके कई कारण थे–मुग़ल साम्राज्य के पतन के कारण बाज़ारों

तथा उत्पादकता की हानि, पुर्तगालियों द्वारा समुद्री मार्गों पर नियंत्रण और बंबई (वर्तमान मुंबई) से प्रतिस्पर्धा जहाँ 1668 में अँग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना मुख्यालय स्थापित कर लिया था। आज सूरत एक महत्त्वपूर्ण वाणिज्यिक केंद्र है।

जोखिम-भरा दौर – मसूलीपट्नम के लिए चुनौती

मसूलीपट्नम या मछलीपट्नम नगर कृष्णा नदी के डेल्टा पर स्थित है। सत्रहवीं शताब्दी में यह भिन्न-भिन्न प्रकार की गतिविधियों का नगर था।

हॉलैंड और इंग्लैंड दोनों देशों की ईस्ट इंडिया कंपनियों ने मसूलीपट्नम पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयत्न किया, क्योंकि तब तक वह आंध्र तट का सबसे महत्त्वपूर्ण पत्तन बन गया था। मसूलीपट्नम का किला, हॉलैंडवासियों ने बनाया था।

मछुआरों का एक गरीब नगर

अँग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी के एक **गुमाश्ते** विलियम मेथवल्ड ने 1620 ई॰ में इन शब्दों में मसूलीपट्नम का वर्णन किया था :

यह गोलकुंडा का मुख्य पत्तन है, जहाँ परमपूज्य ईस्ट इंडिया कंपनी अपना एजेंट रखती है। यह एक छोटा नगर है, पर घना बसा हुआ, बिना किसी चारदीवारी के, और खराब तरीके से बना हुआ। न ही यह अच्छी जगह स्थित है। इसके सभी जलस्रोत खारे पानी के हैं। पहले यह एक गरीब मछुआरा-नगर था... आगे चलकर यहाँ जहाज़ों के लिए लंगर डालने की सुविधा हो गई, जिससे व्यापारी लोग यहाँ रहने लगे और चूँकि हमारे तथा हॉलैंड के निवासी यहाँ इस तट पर आते-जाते रहते हैं, यह उनके लिए निवास की व्यवस्था करता है।

? *अँग्रेज़ों और हॉलैंडवासियों ने मसूलीपट्नम में अपनी बस्तियाँ बसाने का निर्णय क्यों लिया?*

गुमाश्ता
ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा नियुक्त व्यापारी

गोलकुंडा के क़ुत्बशाही शासकों ने कपड़ों, मसालों और अन्य चीज़ों की बिक्री पर शाही एकाधिकार लागू किया; जिससे कि वहाँ का व्यापार पूरी तरह ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में न चला जाए। विभिन्न व्यापारी

समूहों–गोलकुंडा के कुलीन वर्गों, फ़ारसी सौदागरों, तेलुगु कोमटी चेट्टियार और यूरोपीय व्यापारियों ने नगर को घनी आबादी वाला और समृद्धिशाली बना दिया। जब मुग़लों ने गोलकुंडा तक अपनी शक्ति बढ़ा ली, तो उनके प्रतिनिधि सूबेदार मीर जुमला ने, जो कि स्वयं एक सौदागर था, हालैंडवासियों और अँग्रेज़ों को आपस में भिड़ाना शुरू कर दिया। 1686-87 में मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब ने गोलकुंडा को मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया।

अब यूरोपीय कंपनियों के सामने अन्य विकल्प ढूँढने की समस्या आ खड़ी हुई। कंपनी की नई नीति के अंतर्गत केवल इतना ही पर्याप्त नहीं था कि पत्तन, भीतरी प्रदेश के उत्पादन केंद्रों के साथ संबंध बनाए रखें; बल्कि इस बात की भी आवश्यकता महसूस की गई कि कपंनी के नए केंद्र एक साथ राजनीतिक, प्रशासनिक तथा वाणिज्यिक भूमिकाएँ भी अदा करें। जब कंपनी के व्यापारी, बंबई (वर्तमान मुंबई) कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) और मद्रास (वर्तमान चेन्नई) चले गए, तब मसूलीपट्टनम अपने व्यापार और समृद्धि दोनों ही खो बैठा और अठारहवीं शताब्दी के दौरान उसका अध:पतन हो गया और आज वह एक छोटे-से जीर्ण-शीर्ण नगर से अधिक कुछ नहीं है।

नए नगर और व्यापारी

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में यूरोप के देश, व्यापारिक उद्देश्यों से मसालों और कपड़ों की तलाश में लगे हुए थे; जो यूरोप और पश्चिमी एशिया, दोनों जगह लोकप्रिय हो गए थे। अँग्रेज़ों, हॉलैंडवासियों और फ्रांसीसियों ने पूर्व में अपनी वाणिज्यिक गतिविधियों का विस्तार करने के लिए अपनी-अपनी ईस्ट इंडिया कंपनी बनाईं। प्रारंभ में तो मुल्ला अब्दुल गफ़ूर और वीरजी वोरा जैसे कुछ बड़े भारतीय व्यापारियों ने जिनके पास बड़ी संख्या में जहाज़ थे, उनका मुकाबला किया। किंतु यूरोपीय कंपनियों ने समुद्री व्यापार पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए अपनी नौ-शक्ति का प्रयोग किया और भारतीय व्यापारियों को अपने एजेंट के रूप में कार्य करने के लिए मज़बूर कर दिया। अंतत: अँग्रेज़, उपमहाद्वीप में सर्वाधिक सफल वाणिज्यिक एवं राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरकर स्थापित हो गए।

वस्त्रों जैसी वस्तुओं की माँग में तेज़ी आ जाने से अधिकाधिक लोगों ने कताई, बुनाई, धुलाई, रंगाई आदि का धंधा अपना लिया। इससे इन शिल्पों का बहुत विस्तार हुआ। भारतीय वस्त्रों के रूप-रंग और डिज़ाइन अधिकाधिक

परिष्कृत होते गए, किंतु इस काल में शिल्पकारों की स्वतंत्रता घटने लगी। शिल्पीजन पेशगी की प्रणाली पर काम करने लगे, जिसका अर्थ यह था कि उन्होंने जिन यूरोपीय एजेंटों से पहले ही पेशगी ले ली थी, उन्हीं के लिए उन्हें कपड़ा बुनना होता था। अब बुनकरों को अपना कपड़ा या बुनाई के नमूने बेचने की स्वतंत्रता नहीं थी। उन्हें तो कंपनी के एजेंटों द्वारा निर्धारित डिज़ाइन के कपड़े उन्हीं की माँग के अनुसार बनाने पड़ते थे।

अठारहवीं शताब्दी में बंबई, कलकत्ता और मद्रास नगरों का उदय हुआ, जो आज प्रमुख महानगर हैं। शिल्प और वाणिज्य में बड़े-बड़े परिवर्तन आए, जब बुनकर जैसे कारीगर तथा सौदागर यूरोपीय कंपनियों द्वारा इन नए नगरों में स्थापित 'ब्लैक टाउन्स' में स्थानांतरित हो गए। 'ब्लैक' यानी देसी व्यापारियों और शिल्पकारों को इन 'ब्लैक टाउन्स' में सीमित कर दिया गया, जबकि गोरे शासकों ने मद्रास में फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज और कलकत्ता में फ़ोर्ट सेंट विलियम की शानदार कोठियों में अपने आवास बनाए। अठारहवीं शताब्दी में शिल्पकलाओं तथा वाणिज्य की कहानी हम अगले वर्ष पढ़ेंगे।

चित्र 8
प्रारंभिक उन्नीसवीं शताब्दी में बंबई की एक सड़क

वास्को-डि-गामा और क्रिस्टोफ़र कोलंबस

पंद्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय नाविकों द्वारा समुद्री मार्ग खोजने के अभूतपूर्व कार्य किए गए। उनमें से अनेक नाविक भारतीय उपमहाद्वीप तक पहुँचने का मार्ग खोजने और मसाले प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित थे।

पुर्तगाली नाविक वास्को-डि-गामा अटलांटिक महासागर के साथ-साथ यात्रा करते हुए केप ऑफ गुड होप से निकलकर और हिंद महासागर को पार करके भारत पहुँचा। उसे अपनी पहली यात्रा को पूरा करने में एक वर्ष से भी अधिक समय लगा। वह 1498 में कालीकट पहुँचा और अगले वर्ष पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन लौट गया। इस समुद्री यात्रा के दौरान उसके चार में से दो जहाज़ नष्ट हो गए और 170 यात्रियों में से केवल 54 ही जीवित बचे। इन प्रत्यक्ष खतरों के बावजूद जो मार्ग खोले या खोजे गए, वे अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुए और उसके बाद तो अँग्रेज़, हॉलैंडवासी और फ्रांसीसी नाविकों ने भी उसका अनुकरण करना प्रारंभ कर दिया।

चित्र 9
वास्को-डि-गामा

भारत पहुँचने के लिए समुद्री मार्गों की खोज का एक अन्य सुपरिणाम निकला, जिसकी किसी को आशा नहीं थी। एक इटलीवासी क्रिस्टो.फर कोलंबस ने भारत पहुँचने का मार्ग खोजने के लिए अटलांटिक महासागर को पार करके पश्चिम की ओर यात्रा करने का निश्चय किया। उसका सोचना था कि चूँकि पृथ्वी गोल है, इसलिए वह पश्चिम की ओर से भी भारत पहुँच सकता है। वह 1492 में वेस्टइंडीज के तट पर पहुँचा (वेस्टइंडीज का नाम इसी भ्रांति के कारण पड़ा)। उसके पीछे स्पेन और पुर्तगाल के नाविक और विजेता भी वहाँ आते रहे और उन्होंने मध्य और दक्षिणी अमेरिका के बड़े-बड़े भागों को अपने कब्ज़े में कर लिया और अकसर उन प्रदेशों की पहले वाली बस्तियों को नष्ट कर दिया।

कल्पना करें

आप सत्रहवीं शताब्दी में सूरत से पश्चिमी एशिया की यात्रा करने की योजना बना रहे हैं। इस संबंध में आप कैसी तैयारियाँ करेंगे?

फिर से याद करें

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

   (क) राजराजेश्वर मंदिर ———————— में बनाया गया था।

   (ख) अजमेर सूफ़ी संत ———————— से संबंधित है।

   (ग) हम्पी ———————— साम्राज्य की राजधानी थी।

   (घ) हॉलैंडवासियों ने आंध्र प्रदेश में ———————— पर अपनी बस्ती बसाई।

2. बताएँ क्या सही है और क्या गलत :

   (क) हम राजराजेश्वर मंदिर के मूर्तिकार (स्थपति) का नाम एक शिलालेख से जानते हैं।

   (ख) सौदागर लोग काफ़िलों में यात्रा करने की बजाय अकेले यात्रा करना अधिक पसंद करते थे।

   (ग) काबुल हाथियों के व्यापार का मुख्य केंद्र था।

   (घ) सूरत बंगाल की खाड़ी पर स्थित एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक पत्तन था।

3. तंजावूर नगर को जल की आपूर्ति कैसे की जाती थी?

4. मद्रास जैसे बड़े नगरों में स्थित 'ब्लैक टाउन्स' में कौन रहता था?

बीज शब्द

मंदिर नगर

नगरीकरण

विश्वकर्मा

वाणिज्य केंद्र

'ब्लैक टाउन'

आइए समझें

5. आपके विचार से मंदिरों के आस-पास नगर क्यों विकसित हुए?

6. मंदिरों के निर्माण तथा उनके रख-रखाव के लिए शिल्पीजन कितने महत्वपूर्ण थे?

7. लोग दूर-दूर के देशों-प्रदेशों से सूरत क्यों आते थे?

8. कलकत्ता जैसे नगरों में शिल्प उत्पादन तंजावूर जैसे नगरों के शिल्प उत्पादन से किस प्रकार भिन्न था?

आइए विचार करें

9. इस अध्याय में वर्णित किसी एक नगर की तुलना आप, अपने परिचित किसी कस्बे या गाँव से करें? क्या दोनों के बीच कोई समानता या अंतर हैं?

10. सौदागरों को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता था? आपके विचार से क्या वैसी कुछ समस्याएँ आज भी बनी हुई हैं?

आइए करके देखें

11. तंजावूर या हम्पी के वास्तुशिल्प के बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करें और इन नगरों के मंदिरों तथा अन्य भवनों के चित्रों की सहायता से एक स्क्रैपबुक तैयार करें।

12. किसी वर्तमान तीर्थस्थान का पता लगाएँ। बताएँ कि लोग वहाँ क्यों जाते हैं, वहाँ क्या करते हैं, क्या उस केंद्र के आस-पास दुकानें हैं और वहाँ क्या खरीदा और बेचा जाता है?

7 जनजातियाँ, खानाबदोश और एक जगह बसे हुये समुदाय

अध्याय 2, 3 और 4 में आपने देखा कि किस प्रकार राज्यों का उत्थान और पतन हुआ। इस उठापटक के बीच ही कलाओं, दस्तकारियों और उत्पादक गतिविधियों की नयी किस्में शहरों और गाँवों में फल-फूल रही थीं। एक लंबे अंतराल में कई महत्त्वपूर्ण राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए। लेकिन सामाजिक परिवर्तन हर जगह एक समान नहीं थे, क्योंकि अलग-अलग किस्म के समाज अलग-अलग तरीकों से विकसित हुए। ऐसा कैसे और क्यों हुआ, यह समझना महत्त्वपूर्ण है।

इस उपमहाद्वीप के बड़े हिस्से में समाज, वर्ण के नियमानुसार पहले से ही विभाजित था। ब्राह्मणों द्वारा सुझाए गए ये नियम, बड़े-बड़े राज्यों के राजाओं द्वारा स्वीकार किए गए थे। इससे ऊँच और नीच तथा अमीर और गरीब के बीच का फ़ासला बढ़ा। दिल्ली के सुलतानों और मुग़लों के काल में श्रेणीबद्ध समाज ज़्यादा जटिल हो गया।

चित्र 1
जनजातीय नृत्य : संताल चित्र खर्रा

बड़े शहरों से परे – जनजातीय समाज

अलबत्ता, दूसरे तरह के समाज भी उस समय मौजूद थे। उपमहाद्वीप के कई समाज ब्राह्मणों द्वारा सुझाए गए सामाजिक नियमों और कर्मकांडों को नहीं मानते थे और न ही वे कई असमान वर्गों में विभाजित थे। अकसर ऐसे समाजों को जनजातियाँ कहा जाता रहा है।

प्रत्येक जनजाति के सदस्य नातेदारी के बंधन से जुड़े होते थे। कई जनजातियाँ खेती से अपना जीविकोपार्जन करती थीं। कुछ दूसरी जनजातियों के लोग शिकारी, संग्राहक या

पशुपालक थे। प्रायः वे अपने निवासस्थान के प्राकृतिक संसाधनों का पूरा-पूरा इस्तेमाल करने के लिए इन गतिविधियों का मिला-जुला रूप अपनाते थे। कुछ जनजातियाँ खानाबदोश थीं और वे एक जगह से दूसरी जगह घूमती रहती थीं। जनजातीय समूह, संयुक्त रूप से भूमि और चरागाहों पर नियंत्रण रखते थे और अपने खुद के बनाए नियमों के आधार पर परिवारों के बीच इनका बँटवारा करते थे।

इस उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में कई बड़ी जनजातियाँ फली-फूलीं। सामान्यतः ये जंगलों, पहाड़ों, रेगिस्तानों और दूसरी दुर्गम जगहों पर निवास करती थीं। कभी-कभी जाति विभाजन पर आधारित अधिक शक्तिशाली समाजों के साथ उनका टकराव होता था। कई मायनों में इन जनजातियों ने अपनी आज़ादी को बरकरार रखा और अपनी अलहदा संस्कृति को बचाया।

?

उपमहाद्वीप का एक भौतिक मानचित्र लेकर वे इलाके बताइए जहाँ जनजातीय लोग रहते रहे होंगे।

लेकिन जाति-आधारित और जनजातीय समाज दोनों अपनी विविध किस्म की ज़रूरतों के लिए एक-दूसरे पर निर्भर भी रहे। टकराव और निर्भरता के इस संबंध ने दोनों तरह के समाजों को धीरे-धीरे बदलने का काम भी किया।

जनजातीय लोग कौन थे?

समकालीन इतिहासकारों और मुसाफ़िरों ने जनजातियों के बारे में बहुत कम जानकारी दी है। कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो जनजातीय लोग भी लिखित दस्तावेज़ नहीं रखते थे। लेकिन समृद्ध रीति-रिवाजों और वाचिक/मौखिक परंपराओं का वे संरक्षण करते थे। ये परंपराएँ हर नयी पीढ़ी को विरासत में मिलती थीं। आज के इतिहासकार जनजातियों का इतिहास लिखने के लिए इन वाचिक परंपराओं को इस्तेमाल करने लगे हैं।

जनजातीय लोग भारत के लगभग हर क्षेत्र में पाए जाते थे। किसी भी एक जनजाति का इलाका और प्रभाव समय के साथ-साथ बदलता रहता था। कुछ शक्तिशाली जनजातियों का बड़े इलाकों पर नियंत्रण था। पंजाब में खोखर जनजाति तेरहवीं और चौदहवीं सदी के दौरान बहुत प्रभावशाली थी। यहाँ बाद में गक्खर लोग ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो गए। उनके मुखिया, कमाल खान गक्खर को बादशाह अकबर ने मनसबदार बनाया था। मुल्तान और सिंध में मुग़लों द्वारा अधीन कर लिए जाने से पहले लंगाह और अरघुन

मानचित्र 1
प्रमुख भारतीय जनजातियों के क्षेत्र
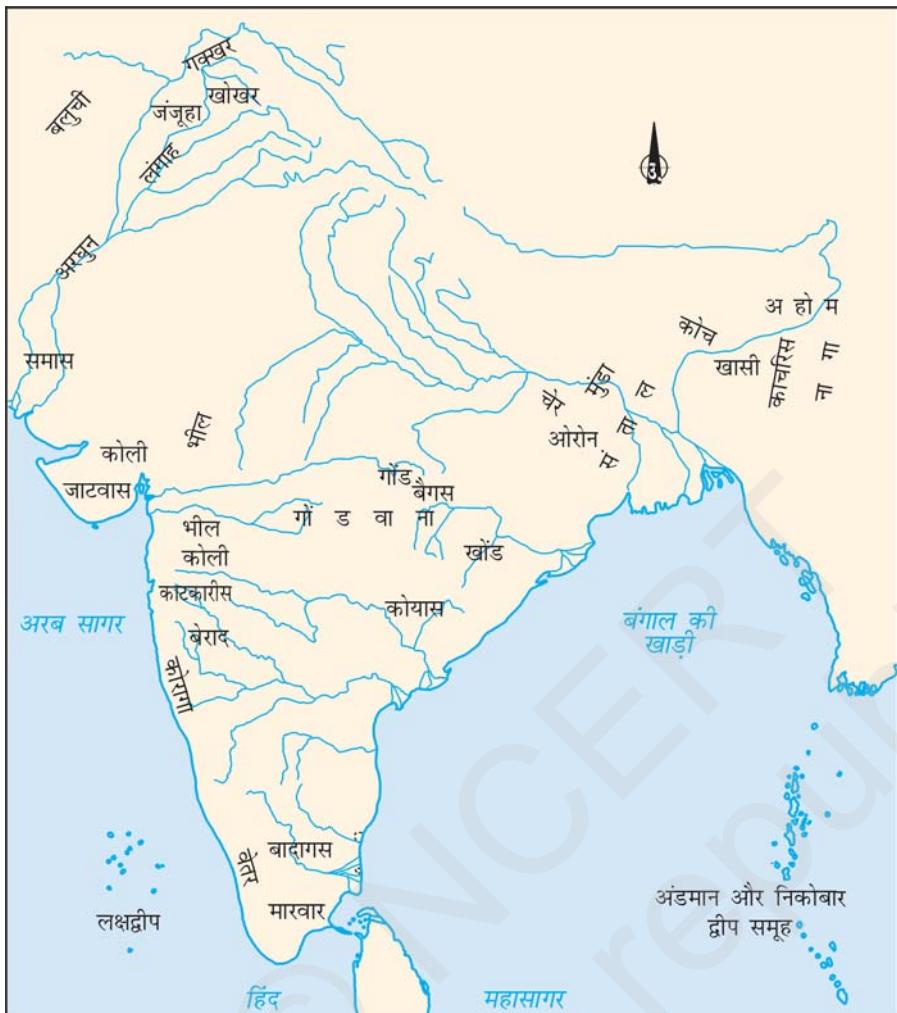
लोगों का प्रभुत्व अत्यंत विस्तृत क्षेत्र पर था। उत्तर-पश्चिम में एक और विशाल एवं शक्तिशाली जनजाति थी–बलोच। ये लोग अलग-अलग मुखियों वाले कई छोटे-छोटे **कुलों** में बँटे हुए थे। पश्चिमी हिमालय में गडड्डी गड़रियों की जनजाति रहती थी। उपमहाद्वीप के सुदूर उत्तर-पूर्वी भाग पर भी नागा, अहोम और कई दूसरी जनजातियों का पूरी तरह प्रभुत्व था।

मौजूदा बिहार और झारखंड के कई इलाकों में बारहवीं सदी तक चेर सरदारशाहियों का उदय हो चुका था। बादशाह अकबर के प्रसिद्ध सेनापति राजा मान सिंह ने 1591 में चेर लोगों पर हमला किया और उन्हें परास्त किया। उन्हें लूट कर अच्छा-खासा माल इकट्ठा किया गया, लेकिन वे पूरी तरह अधीन नहीं बनाए गए। औरंगज़ेब के समय में मुग़ल सेनाओं ने चेर

कुल
परिवारों या घरों के एक ऐसे समूह को कुल कहते हैं जो एक ही पूर्वज की संतान होने का दावा करते हैं। जनजातीय संगठन प्रायः नातेदारी या कुल संबंधी निष्ठा पर आधारित होते हैं।
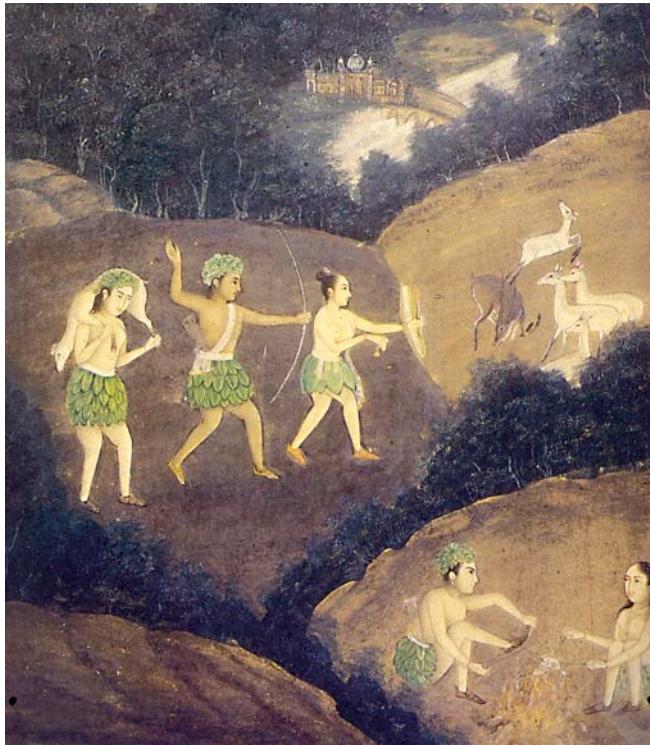
चित्र 2 : रात में भील लोग हिरन का शिकार कर रहे हैं।
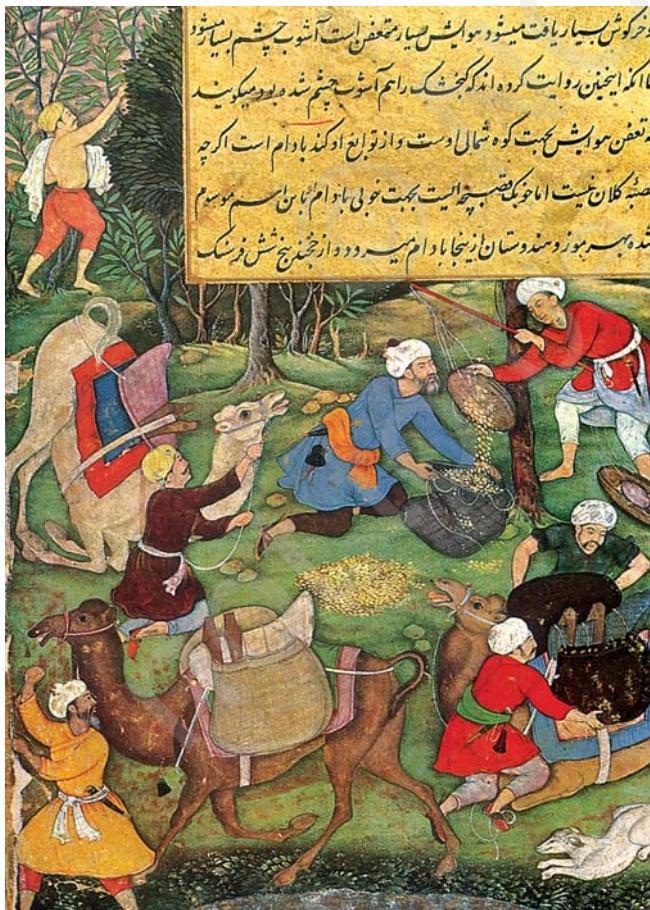
लोगों के कई किलों पर कब्ज़ा किया और इस जनजाति को अपना अधीनस्थ बना लिया। इस क्षेत्र में रहने वाली महत्त्वपूर्ण जनजातियों में मुंडा और संताल थे, यद्यपि ये उड़ीसा और बंगाल में भी रहते थे।

कर्नाटक और महाराष्ट्र की पहाड़ियाँ–कोली, बेराद तथा कई दूसरी जनजातियों के निवासस्थान थे। कोली लोग गुजरात के कई इलाकों में भी रहते थे। कुछ और दक्षिण में कोरागा, वेतर, मारवार और दूसरी जनजातियों की विशाल आबादी थी।

भीलों की बड़ी जनजाति पश्चिमी और मध्य भारत में फैली हुई थी। सोलहवीं सदी का अंत आते-आते उनमें से कई एक जगह बसे हुए खेतिहर और यहाँ तक कि ज़मींदार बन चुके थे। तब भी भीलों के कई कुल शिकारी-संग्राहक बने रहे। मौजूदा छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में गोंड लोग बड़ी तादाद में फैले हुए थे।

खानाबदोश और घुमंतू लोग कैसे रहते थे

खानाबदोश चरवाहे अपने जानवरों के साथ दूर-दूर तक घूमते थे। उनका जीवन दूध और अन्य पशुचारी उत्पादों पर निर्भर था। वे खेतिहर गृहस्थों से अनाज, कपड़े, बर्तन और ऐसी ही

चित्र 3

घुमंतू व्यापारियों की श्रृंखलाएँ भारत को बाहरी दुनिया से जोड़ती थीं। यहाँ मेवा इकट्ठा करके उसे ऊँटों पर लादा जा रहा है। मध्य एशिया के व्यापारी ऐसी वस्तुएँ भारत लाते थे और बंजारे एवं अन्य व्यापारी उन्हें स्थानीय बाज़ारों तक पहुँचाते थे।

चीज़ों के लिए ऊन, घी इत्यादि का विनिमय भी करते थे। कुछ खानाबदोश अपने जानवरों पर सामानों की ढुलाई का काम भी करते थे। एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते वे सामानों की खरीद-फ़रोख्त करते थे।

बंजारा लोग सबसे महत्त्वपूर्ण व्यापारी-खानाबदोश थे। उनका कारवाँ 'टांडा' कहलाता था। सुलतान अलाउद्दीन ख़लजी (अध्याय 3) बंजारों का ही इस्तेमाल नगर के बाज़ारों तक अनाज की ढुलाई के लिए करते थे। बादशाह जहाँगीर ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि बंजारे विभिन्न इलाकों से अपने बैलों पर अनाज ले जाकर शहरों में बेचते थे। सैन्य अभियानों के दौरान वे मुग़ल सेना के लिए खाद्यान्नों की ढुलाई का काम करते थे। किसी भी विशाल सेना के लिए 1,00,000 बैल अनाज ढोते होंगे।

बंजारे

सत्रहवीं सदी के आरंभ में भारत आने वाले एक अँग्रेज़ व्यापारी, पीटर मंडी, ने बंजारों का वर्णन किया:

सुबह हमारी मुलाकात बंजारों की एक टांडा से हुई जिसमें 14,000 बैल थे। सारे पशु गेहूँ और चावल जैसे अनाजों से लदे हुए थे।... ये बंजारे लोग अपनी पूरी घर-गृहस्थी–बीवी और बच्चे–अपने साथ लेकर चलते हैं। एक टांडा में कई परिवार होते हैं। उनका जीने का तरीका उन भारवाहकों से मिलता-जुलता है जो लगातार एक जगह से दूसरी जगह जाते रहते हैं। गाय-बैल उनके अपने होते हैं। कई बार वे सौदागरों के द्वारा भाड़े पर नियुक्त किए जाते हैं, लेकिन ज़्यादातर वे खुद सौदागर होते हैं। अनाज जहाँ सस्ता उपलब्ध है, वहाँ से वे खरीदते हैं और उस जगह ले जाते हैं जहाँ वह महँगा है। वहाँ से वे फिर ऐसी चीज़ें लाद लेते हैं जो किसी और जगह मुनाफ़े के साथ बेची जा सकती हैं।... टांडा में छह से सात सौ तक लोग हो सकते हैं... वे एक दिन में 6 या 7 मील से ज़्यादा सफ़र नहीं करते–यहाँ तक कि ठंडे मौसम में भी। अपने गाय-बैलों पर से सामान उतारने के बाद वे उन्हें चरने के लिए खुला छोड़ देते हैं, क्योंकि यहाँ ज़मीन पर्याप्त है और उन्हें रोकने वाला कोई नहीं।

? *पता करें कि आजकल गाँव से शहरों तक अनाज ले जाने का काम कैसे होता है। बंजारों के तौर-तरीकों से यह किन मायनों में भिन्न या समान हैं?*

खानाबदोश और भ्रमणशील समूह

खानाबदोश घुमंतू लोग होते हैं। उनमें से कई पशुचारी होते हैं जो अपनी रेवड़ और पशुवृंद के साथ एक चरागाह से दूसरे चरागाह घूमते रहते हैं। इसी तरह दस्तकार, फेरीवाले और नृतक-गायक एवं अन्य तमाशबीन भ्रमणशील समूह अपना कामधंधा करते-करते एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा पर रहते हैं। खानाबदोश और भ्रमणशील समूह, दोनों अकसर उस जगह लौट कर आते हैं जहाँ उन्होंने पिछले साल दौरा किया था।

कई पशुचारी जनजातियाँ मवेशी और घोड़ों, जैसे जानवरों को पालने-पोसने और संपन्न लोगों के हाथ उन्हें बेचने का काम करती थीं। छोटे-मोटे फेरीवालों की विभिन्न जातियाँ भी एक गाँव से दूसरे गाँव भ्रमण करती थीं। ये लोग रस्सी, सरकंडे की चीज़ें, फूस की चटाई और मोटे बोरे जैसे माल बनाते और बेचते थे। कभी-कभी भिक्षुक लोग भी घूमंतू सौदागरों का काम करते थे। नर्तकों, गायकों और अन्य तमाशबीनों की भी जातियाँ थीं जो विभिन्न नगरों और गाँवों में कमाई के लिए अपनी कला का प्रदर्शन करती थीं।

चित्र 4
कांस्य मगरमच्छ कुट्टिया कोंड जनजाति, उड़ीसा

बदलता समाज – नयी जातियाँ और श्रेणियाँ

जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था और समाज की ज़रूरतें बढ़ती गईं, नए हुनर वाले लोगों की आवश्यकता पड़ी। वर्णों के भीतर छोटी-छोटी जातियाँ उभरने लगीं। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणों के बीच नयी जातियाँ सामने आईं। दूसरी ओर, कई जनजातियों और सामाजिक समूहों को जाति-विभाजित समाज में शामिल कर लिया गया और उन्हें जातियों का दर्जा दे दिया गया। विशेषज्ञता प्राप्त शिल्पियों–सुनार, लोहार, बढ़ई और राजमिस्त्री–को भी ब्राह्मणों द्वारा जातियों के रूप में मान्यता दे दी गई। वर्ण की बजाय जाति, समाज के संगठन का आधार बनी।

जाति पर विचार-विमर्श

वर्तमान तमिलनाडु के तिरूचिरापल्ली ताल्लुक में स्थित उईयाकोंडन उदेयार के बारहवीं शताब्दी के अभिलेख में ब्राह्मणों की एक सभा (अध्याय 2) के विचार-विमर्श का वर्णन मिलता है।

वे रथकारों (शाब्दिक अर्थ, रथ बनाने वाले लोग) की सामाजिक स्थिति पर विचार-विमर्श कर रहे थे। उन्होंने इस जाति के कामकाज तय किए जिनमें वास्तुकला, रथों और गाड़ियों का निर्माण, मंदिर द्वार बनाना, मूर्तियाँ स्थापित करना, बलि के लिए लकड़ियों से बने साज-सामान तैयार करना, मंडप बनाना और राजा के लिए ज़ेवर बनाना शामिल थे।

ग्यारहवीं और बारहवीं सदी तक आते-आते क्षत्रियों के बीच नए राजपूत गोत्रों की ताकत में काफ़ी इजाफ़ा हुआ। वे हूण, चंदेल, चालुक्य और कुछ दूसरी वंश-परंपराओं से आते थे। इनमें से कुछ पहले जनजातियों में आते थे और बाद में कई कुल राजपूत मान लिए गए। धीरे-धीरे उन्होंने पुराने शासकों की जगह ले ली विशेषत: कृषि वाले क्षेत्रों में। यहाँ कई तरह के परिवर्तन हो रहे थे और शासकों ने शक्तिशाली राज्यों के निर्माण में अपनी संपदा का इस्तेमाल किया।

शासकों के रूप में राजपूत गोत्रों के उदय के उदाहरण का जनजातीय लोगों ने अनुसरण किया। धीरे-धीरे ब्राह्मणों के समर्थन से कई जनजातियाँ, जाति व्यवस्था का हिस्सा बन गईं। लेकिन केवल प्रमुख जनजातीय परिवार ही शासक वर्ग में शामिल हो पाए। उनकी बहुसंख्यक आबादी, समाज की छोटी जातियों में ही जगह बना पाई। दूसरी तरफ़ पंजाब, सिंध और उत्तर-पश्चिमी सरहद की प्रभुत्वशाली जनजातियों ने काफ़ी पहले इस्लाम को अपना लिया था। वे जाति व्यवस्था को नकारते रहे। सनातनी हिंदू धर्म के द्वारा प्रस्तावित गैर-बराबरी वाली सामाजिक व्यवस्था इन इलाकों में बड़े पैमाने पर स्वीकार नहीं की गई।

राज्यों की उत्पत्ति, जनजातीय लोगों के बीच हुए सामाजिक बदलाव से गहराई से संबंधित है। हमारे इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण हिस्से के दो उदाहरण नीचे उल्लिखित हैं।

चित्र 5
गोंड महिला

नज़दीक से एक नज़र

गोंड

गोंड लोग, गोंडवाना नामक विशाल वनप्रदेश में रहते थे। वे **स्थानांतरीय कृषि** अर्थात् जगह बदल-बदल कर खेती करते थे। विशाल गोंड जनजाति कई छोटे-छोटे कुलों में भी बँटी हुई थी। प्रत्येक कुल का अपना राजा या राय होता था। जिस समय दिल्ली के सुलतानों की ताकत घट रही थी, उसी समय कुछ बड़े गोंड राज्य छोटे गोंड सरदारों पर हावी होने लगे थे। अकबर के शासनकाल के एक इतिहास *अकबरनामा* में उल्लिखित है कि गढ़ कटंगा के गोंड राज्य में 70,000 गाँव थे।

स्थानांतरीय कृषि
किसी वनप्रांत के पेड़ों और झाड़ियों को पहले काटा और जलाया जाता है। उसकी राख में ही फ़सल बो दी जाती है। जब यह ज़मीन अपनी उर्वरता खो देती है, तब ज़मीन का दूसरा टुकड़ा साफ़ किया जाता है और इसी तरह से फ़सल उगाई जाती है।

इन राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था केंद्रीकृत हो रही थी। राज्य, गढ़ों में विभाजित थे। हर गढ़ किसी खास गोंड कुल के नियंत्रण में था। ये पुन:

मानचित्र 2
गोंडवाना

चौरासी गाँवों की इकाइयों में विभाजित होते थे, जिन्हें चौरासी कहा जाता था। चौरासी का उप-विभाजन बरहोतों में होता था, जो बारह-बारह गाँवों को मिला कर बनते थे।

बड़े राज्यों के उदय ने गोंड समाज के चरित्र को बदल डाला। उनका मूलत: बराबरी वाला समाज धीरे-धीरे असमान सामाजिक वर्गों में विभाजित हो गया। ब्राह्मण लोगों ने गोंड राजाओं से अनुदान में भूमि प्राप्त की और अधिक प्रभावशाली बन गए। गोंड सरदारों को अब राजपूतों के रूप में मान्यता प्राप्त करने की चाहत हुई। इसलिए गढ़ कटंगा के गोंड राजा अमन दास ने संग्राम शाह की उपाधि धारण की। उसके पुत्र दलपत ने महोबा के चंदेल राजपूत राजा सालबाहन की पुत्री राजकुमारी दुर्गावती से विवाह किया।

दलपत की मृत्यु कम उम्र में ही हो गई। रानी दुर्गावती बहुत योग्य थी और उसने अपने पाँच साल के पुत्र बीर नारायण के नाम पर शासन की कमान सँभाली। उसके समय में राज्य का और अधिक विस्तार हुआ। 1565 में आसिफ़ खान के नेतृत्व में मुग़ल सेनाओं ने गढ़ कटंगा पर हमला किया। रानी दुर्गावती ने इसका जम कर सामना किया। उसकी हार हुई और उसने समर्पण करने की बजाय मर जाना बेहतर समझा। उसका पुत्र भी तुरंत बाद लड़ता हुआ मारा गया।

चित्र 6
एक नक्काशीदार दरवाज़ा, गोंड जनजाति, बस्तर क्षेत्र, मध्य प्रदेश

गढ़ कटंगा एक समृद्ध राज्य था। इसने हाथियों को पकड़ने और दूसरे राज्यों में उनका निर्यात करने के व्यापार में ख़ासा धन कमाया। जब मुग़लों ने गोंडों को हराया, तो उन्होंने लूट में बेशकीमती सिक्के और हाथी बहुतायत में हथिया लिए। उन्होंने राज्य का एक भाग अपने कब्ज़े में ले किया और शेष बीर नारायण के चाचा चंदर शाह को दे दिया। गढ़ कटंगा के पतन के बावजूद गोंड राज्य कुछ समय तक चलता रहा। लेकिन वे काफ़ी कमज़ोर हो गए और बाद में अधिक शक्तिशाली बुंदेलों और मराठों के खिलाफ़ उनके संघर्ष असफल रहे।

चर्चा करें

मुग़ल लोग गोंड प्रदेश पर कब्ज़ा क्यों करना चाहते थे?

अहोम

अहोम लोग मौजूदा म्यानमार से आकर तेरहवीं सदी में ब्रह्मपुत्र घाटी में आ बसे। उन्होंने भुइयाँ (भूस्वामी) लोगों की पुरानी राजनीतिक व्यवस्था का दमन करके नए राज्य की स्थापना की। सोलहवीं सदी के दौरान उन्होंने चुटियों (1523) और कोच-हाजो (1581) के राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया। उन्होंने कई अन्य जनजातियों को भी अधीन कर लिया। अहोमों ने एक बड़ा राज्य बनाया और इसके लिए 1530 के दशक में ही, इतने वर्षों पहले, आग्नेय अस्त्रों का इस्तेमाल किया। 1660 तक आते-आते वे उच्चस्तरीय बारूद और तोपों का निर्माण करने में सक्षम हो गए थे।

लेकिन अहोम लोगों को दक्षिण-पश्चिम से कई आक्रमणों का सामना करना पड़ा। 1662 में मीर जुमला के नेतृत्व में मुग़लों ने अहोम राज्य पर हमला किया। बहादुरी से सामना करने के बावजूद अहोम लोगों की पराजय हुई। लेकिन उस क्षेत्र पर मुग़लों का प्रत्यक्ष नियंत्रण ज़्यादा समय तक बना नहीं रह सका।

अहोम राज्य, बेगार पर निर्भर था। राज्य के लिए जिन लोगों से ज़बरन काम लिया जाता था, वे 'पाइक' कहलाते थे। अहोम राज्य में एक जनगणना की गई थी। प्रत्येक गाँव को अपनी बारी आने पर निश्चित संख्या में पाइक भेजने होते थे। इसके लिए जनगणना के बाद सघन आबादी वाले इलाकों से कम आबादी वाले इलाकों में लोगों को

मानचित्र 3

पूर्वी भारत की जनजातियाँ

चित्र 7
कान के आभूषण, कबोई नागा जनजाति, मणिपुर

स्थानांतरित किया गया था। इस प्रकार अहोम कुल टूट गए। सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध पूरा होते-होते प्रशासन खासा केंद्रीकृत हो चुका था।

लगभग सभी वयस्क पुरुष युद्ध के दौरान सेना में अपनी सेवाएँ प्रदान करते थे। दूसरे समय में वे बाँध, सिंचाई व्यवस्था इत्यादि के निर्माण या अन्य सार्वजनिक कार्यों में जुटे रहते थे। अहोम लोग चावल की खेती के नए तरीके भी अमल में लाए।

अहोम समाज, कुलों में विभाजित था, जिन्हें 'खेल' कहा जाता था। वहाँ दस्तकारों की बहुत कम जातियाँ थीं। इसलिए अहोम क्षेत्र में दस्तकार निकटवर्ती क्षेत्रों से आए थे। एक खेल के नियंत्रण में प्राय: कई गाँव होते थे। किसान को अपने ग्राम समुदाय के द्वारा ज़मीन दी जाती थी। समुदाय की सहमति के बगैर राजा तक इसे वापस नहीं ले सकता था।

शुरुआत में अहोम लोग, अपने जनजातीय देवताओं की उपासना करते थे। लेकिन सत्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ब्राह्मणों के प्रभाव में बढ़ोत्तरी हुई। मंदिरों और ब्राह्मणों को राजा के द्वारा भूमि अनुदान में दी गई। सिब सिंह (1714-44) के काल में हिंदू धर्म वहाँ का प्रधान धर्म बन गया था। लेकिन अहोम राजाओं ने हिंदू धर्म को अपनाने के बाद अपनी पारंपरिक आस्थाओं को पूरी तरह से नहीं छोड़ा था।

अहोम समाज, एक अत्यंत परिष्कृत समाज था। कवियों और विद्वानों को अनुदान में ज़मीन दी जाती थी। नाट्य-कर्म को प्रोत्साहन दिया जाता था। संस्कृत की महत्त्वपूर्ण कृतियों का स्थानीय भाषा में अनुवाद किया गया था। *बुरंजी* नामक ऐतिहासिक कृतियों को पहले अहोम भाषा में और फिर असमिया में लिखा गया था।

?

आपके विचार में मुग़लों ने अहोम प्रदेश को जीतने का प्रयास क्यों किया?

निष्कर्ष

जिस युग की हम चर्चा करते आए हैं, उस युग के दौरान उपमहाद्वीप में काफ़ी सामाजिक परिवर्तन हुआ। वर्ण आधारित समाज और जनजातीय लोग एक-दूसरे के साथ लगातार संपर्क में आते रहे। इस आदान-प्रदान ने दोनों तरह के समाजों में अनुकूलन और बदलाव की प्रक्रिया चलाई। बहुत-सी विभिन्न प्रकार की जनजातियाँ थीं और उन्होंने विभिन्न प्रकार की जीविकाएँ अपनाईं। कालांतर में उनमें से कई जाति आधारित समाज में शामिल हो गईं। लेकिन कईयों ने जाति व्यवस्था और सनातनी हिंदू धर्म, दोनों को ही नकार दिया। कुछ जनजातियों ने सुसंगठित प्रशासनिक व्यवस्था वाले विस्तृत राज्यों की स्थापना

की। इस तरह वे राजनीतिक रूप से ताकतवर हो गए। इसने उन्हें बृहत्तर और अधिक जटिल राज्यों और साम्राज्यों के साथ संघर्ष की स्थिति में ला खड़ा किया।

अन्यत्र

मंगोल

अपने एटलस में मंगोलिया ढूँढिए। इतिहास में सबसे प्रसिद्ध पशुचारी और शिकारी-संग्राहक जनजाति मंगोलों की थी। वे मध्य एशिया के घास के मैदानों (स्टेपी) और थोड़ा उत्तर की ओर के वन प्रांतों में बसे हुए थे। 1206 में चंगेज़ ख़ान ने मंगोल और तुर्की जनजातियों में एकता पैदा करके उन्हें एक शक्तिशाली सैन्य बल में बदल डाला। अपनी मृत्यु के समय (1227) वह एक सुविस्तृत प्रदेश का शासक था। उसके उत्तराधिकारियों ने एक विशाल साम्राज्य खड़ा किया। अलग-अलग समय में इसके अंतर्गत रूस, पूर्वी यूरोप और चीन तथा मध्य-पूर्व का खासा बड़ा हिस्सा शामिल था। मंगोलों के पास सुसंगठित सैन्य एवं प्रशासनिक व्यवस्थाएँ थी। ये विभिन्न जातीय और धार्मिक समूहों के समर्थन पर आधारित थीं।

कल्पना करें

आप एक ऐसे खानाबदोश समुदाय के सदस्य हैं, जो हर तीन महीने बाद अपना निवासस्थान बदलता है। इसका आपके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

फिर से याद करें

1. निम्नलिखित में मेल बैठाएँ :

गढ़	खेल
टांडा	चौरासी
श्रमिक	कारवाँ
कुल	गढ़ कटंगा
सिब सिंह	अहोम राज्य
दुर्गावती	पाइक

बीज शब्द

वर्ण
जाति
टांडा
गढ़
चौरासी
बरहोत
भुइयाँ
पाइक
खेल
बुरंजी
जनगणना

2. रिक्त स्थानों की पूर्त्ति करें :

(क) वर्णों के भीतर पैदा होती नयी जातियाँ ________________ कहलाती थीं।

(ख) ________________ अहोम लोगों के द्वारा लिखी गई ऐतिहासिक कृतियाँ थीं।

(ग) ________________ ने इस बात का उल्लेख किया है कि गढ़ कटंगा में 70,000 गाँव थे।

(घ) बड़े और ताकतवर होने पर जनजातीय राज्यों ने ________________ और ________________ को भूमि-अनुदान दिए।

3. सही या गलत बताइए :

(क) जनजातीय समाजों के पास समृद्ध वाचक परंपराएँ थीं।

(ख) उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग में कोई जनजातीय समुदाय नहीं था।

(ग) गोंड राज्यों में अनेक नगरों को मिला कर चौरासी बनता था।

(घ) भील, उपमहाद्वीप के उत्तर-पूर्वी भाग में रहते थे।

4. खानाबदोश पशुचारकों और एक जगह बसे हुए खेतिहरों के बीच किस तरह का विनिमय होता था?

आइए समझें

5. अहोम राज्य का प्रशासन कैसे संगठित था?

6. वर्ण आधारित समाज में क्या परिवर्तन आए?

7. एक राज्य के रूप में संगठित हो जाने के बाद जनजातीय समाज कैसे बदला?

आइए विचार करें

8. क्या बंजारे लोग अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण थे?

9. गोंड लोगों का इतिहास, अहोमों के इतिहास से किन मायनों में भिन्न था? क्या कोई समानता भी थी?

आइए करके देखें

10. एक मानचित्र पर इस अध्याय में उल्लिखित जनजातियों के इलाकों को चिह्नित करें। किन्हीं दो के संबंध में यह चर्चा करें कि क्या उनके जीविकोपार्जन का तरीका अपने-अपने इलाकों की भौगोलिक विशेषताओं और पर्यावरण के अनुरूप था?

11. जनजातीय समूहों के संबंध में मौजूदा सरकारी नीतियों का पता लगाएँ और उनके बारे में एक बहस का आयोजन करें।

12. उपमहाद्वीप में वर्तमान खानाबदोश पशुचारी समूहों के बारे में और पता लगाएँ। वे कौन-से जानवर रखते हैं? वे प्राय: किन इलाकों में जाते रहते हैं?

8 ईश्वर से अनुराग

आपने लोगों को पूजा-पाठ करते अथवा भजन, कीर्तन या कव्वाली गाते या चुपचाप ईश्वर के नाम का जाप करते हुए देखा होगा। आपने यह भी गौर किया होगा कि उनमें से कुछ तो इतने भाव-विभोर हो जाते हैं कि उनकी आँखों में आँसू भर आते हैं। ईश्वर के प्रति ऐसा प्रेम-भाव या गहरी भक्ति उन विभिन्न प्रकार के भक्ति तथा सूफ़ी आंदोलनों की देन है, जिनका आठवीं शताब्दी से उद्भव होने लगा।

परमेश्वर का विचार

बड़े-बड़े राज्यों के उदय होने से पहले, भिन्न-भिन्न समूहों के लोग अपने-अपने देवी-देवताओं की पूजा किया करते थे। जब लोग, नगरों के विकास और व्यापार तथा साम्राज्यों के माध्यम से एक साथ आते गए, तब नए-नए विचार विकसित होने लगे। यह बात व्यापक रूप से स्वीकार की जाने लगी कि सभी जीवधारी अच्छे तथा बुरे कर्म करते हुए जीवन-मरण और पुनर्जीवन के अनंत चक्रों से गुज़रते हैं। इसी प्रकार यह विचार भी गहरे बैठ गया था कि सभी व्यक्ति जन्म के समय भी एक बराबर नहीं होते हैं। यह मान्यता कि सामाजिक विशेषाधिकार किसी उच्च परिवार अथवा ऊँची जाति में पैदा होने के कारण मिलते हैं, कई पांडित्यपूर्ण ग्रंथों का विषय था।

अनेक लोग ऐसे विचारों के कारण बेचैन थे। इसलिए वे बुद्ध तथा जैनों के उपदेशों की ओर उन्मुख हुए, जिनके अनुसार व्यक्तिगत प्रयासों से सामाजिक अंतरों को दूर किया जा सकता है और पुनर्जन्म के चक्र से छुटकारा पाया जा सकता है। कुछ अन्य लोग परमेश्वर संबंधी इस विचार से आकर्षित हुए कि यदि मनुष्य भक्तिभाव से परमेश्वर की शरण में जाए, तो परमेश्वर, व्यक्ति को इस बंधन से मुक्त कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्त यह विचार, सामान्य सन् (ईसवी सन्) की प्रारंभिक शताब्दियों में

लोकप्रिय हो गया था। विशद् धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से शिव, विष्णु तथा दुर्गा को परम देवी-देवताओं के रूप में पूजा जाने लगा। साथ-साथ, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में पूजे जाने वाले देवों एवं देवियों को शिव, विष्णु या दुर्गा का रूप माना जाने लगा। इसी प्रक्रिया में स्थानीय मिथक तथा किस्से-कहानियाँ पौराणिक कथाओं के अंग बन गए। पुराणों में पूजा की जिन पद्धतियों की अनुशंसा की गई थी, उन्हें स्थानीय पंथों में भी अपनाया जाने लगा। आगे चलकर पुराणों में भी इस बात का उल्लेख किया गया है कि भक्त भले ही किसी भी जाति-पाँति का हो, वह सच्ची भक्ति से ईश्वर की कृपा प्राप्त कर सकता है। भक्ति की विचारधारा इतनी अधिक लोकप्रिय हो गई कि बौद्धों और जैन मतावलंबियों ने भी इन विश्वासों को अपना लिया।

चित्र 1

भगवद्गीता की किसी दक्षिण भारतीय पांडुलिपि से लिया गया एक पृष्ठ

आज भी आप स्थानीय मिथक तथा किस्से-कहानियों की इस प्रक्रिया को व्यापक स्वीकृति पाते हुए देख सकते हैं। क्या आप अपने आस-पास कुछ ऐसे उदाहरण ढूँढ सकते हैं?

दक्षिण भारत में भक्ति का एक नया प्रकार – नयनार और अलवार

सातवीं से नौवीं शताब्दियों के बीच कुछ नए धार्मिक आंदोलनों का प्रादुर्भाव हुआ। इन आंदोलनों का नेतृत्व नयनारों (शैव संतों) और अलवारों (वैष्णव संतों) ने किया। ये संत सभी जातियों के थे, जिनमें पुलैया और पनार जैसी 'अस्पृश्य' समझी जाने वाली जातियों के लोग भी शामिल थे। वे बौद्धों और जैनों के कटु आलोचक थे और शिव तथा विष्णु के प्रति सच्चे प्रेम को मुक्ति का मार्ग बताते थे। उन्होंने संगम साहित्य (तमिल साहित्य का प्राचीनतम उदाहरण और सामान्य सन् यानी ईसवी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में रचित) में समाहित प्यार और शूरवीरता के आदर्शों को अपना कर भक्ति के मूल्यों में उनका समावेश किया था। नयनार और अलवार घुमक्कड़ साधु-संत थे। वे जिस किसी स्थान या गाँव में जाते थे, वहाँ के स्थानीय देवी-देवताओं की प्रशंसा में सुंदर कविताएँ रचकर उन्हें संगीतबद्ध कर दिया करते थे।

नयनार और अलवार

कुल मिलाकर 63 नयनार ऐसे थे, जो कुम्हार, 'अस्पृश्य' कामगार, किसान, शिकारी, सैनिक, ब्राह्मण और मुखिया जैसी अनेक जातियों में पैदा हुए थे। उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध थे–अप्पार, संबंदर, सुंदरार और माणिक्कवसागार। उनके गीतों के दो संकलन हैं–*तेवरम्* और *तिरुवाचकम्।*

अलवार संत संख्या में 12 थे। वे भी भिन्न-भिन्न प्रकार की पृष्ठभूमि से आए थे। उनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध थे–पेरियअलवार, उनकी पुत्री अंडाल, तोंडरडिप्पोडी अलवार और नम्मालवार। उनके गीत *दिव्य प्रबंधम्* में संकलित हैं।

धार्मिक जीवनी/संत जीवनी लेखन
संतों की जीवनियाँ लिखना

चित्र 2
माणिक्कवसागार की एक काँस्य प्रतिमा

दसवीं से बारहवीं सदियों के बीच, चोल और पांड्यन राजाओं ने उन अनेक धार्मिक स्थलों पर विशाल मंदिर बनवा दिए, जहाँ की संत-कवियों ने यात्रा की थी। इस प्रकार भक्ति परंपरा और मंदिर पूजा के बीच गहरे संबंध स्थापित हो गए। यही वह समय था, जब उनकी कविताओं का संकलन तैयार किया गया था। इसके अलावा अलवारों तथा नयनार संतों की **धार्मिक जीवनियाँ** भी रची गईं। आज हम भक्ति परंपरा के इतिहास लेखन में इन जीवनियों का स्रोत के रूप में उपयोग करते हैं।

भक्त और भगवान

माणिक्कवसागार की एक रचना :

मेरे हाड-माँस के इस घृणित पुतले में
तुम आए, जैसे यह कोई सोने का मंदिर हो,
मेरे कृपालु प्रभु, मेरे विशुद्धतम रत्न,
तुमने मुझे सांत्वना देकर बचा लिया।
तुमने मेरा दुःख, मेरा जन्म-मृत्यु का कष्ट और माया-मोह
हर लिया और मुझे मुक्त कर दिया।
हे ब्रह्मानंद, हे प्रकाशमय, मैंने तुम में शरण ली है
और मैं तुम से कभी दूर नहीं हो सकता।

कवि ने भगवान के साथ अपने संबंध का कैसा वर्णन किया है?

दर्शन और भक्ति

भारत के सर्वाधिक प्रभावशाली दार्शनिकों में से एक शंकर का जन्म आठवीं शताब्दी में केरल प्रदेश में हुआ था। वे अद्वैतवाद के समर्थक थे, जिसके अनुसार जीवात्मा और परमात्मा (जो परम सत्य है), दोनों एक ही हैं। उन्होंने यह शिक्षा दी कि ब्रह्म, जो एकमात्र या परम सत्य है, वह निर्गुण और निराकार है। शंकर ने हमारे चारों ओर के संसार को मिथ्या या माया माना और संसार का परित्याग करने अर्थात् संन्यास लेने और ब्रह्म की सही प्रकृति को समझने और मोक्ष प्राप्त करने के लिए ज्ञान के मार्ग को अपनाने का उपदेश दिया।

रामानुज ग्यारहवीं शताब्दी में तमिलनाडु में पैदा हुए थे। वे विष्णुभक्त अलवार संतों से बहुत प्रभावित थे। उनके अनुसार मोक्ष प्राप्त करने का उपाय विष्णु के प्रति अनन्य भक्ति भाव रखना है। भगवान विष्णु की कृपा दृष्टि से भक्त उनके साथ एकाकार होने का परमानंद प्राप्त कर सकता है। रामानुज ने विशिष्टताद्वैत के सिद्धांत को प्रतिपादित किया, जिसके अनुसार आत्मा, परमात्मा से जुड़ने के बाद भी अपनी अलग सत्ता बनाए रखती है। रामानुज के सिद्धांत ने भक्ति की नयी धारा को बहुत प्रेरित किया, जो परवर्ती काल में उत्तरी भारत में विकसित हुई।

?

शंकर या रामानुज के विचारों के बारे में कुछ और पता लगाने का प्रयत्न करें।

बसवन्ना का वीरशैववाद

हमने पहले पढ़ा कि तमिल भक्ति आंदोलन और मंदिर पूजा के बीच क्या संबंध थे। इसके परिणामस्वरूप जो प्रतिक्रिया हुई, वह बसवन्ना और अल्लमा प्रभु और अक्कमहादेवी जैसे उसके साथियों द्वारा प्रारंभ किए गए वीरशैव आंदोलन में स्पष्टत: दिखलाई देती है। यह आंदोलन बारहवीं शताब्दी के मध्य में कर्नाटक में प्रारंभ हुआ था। वीरशैवों ने सभी व्यक्तियों की समानता के पक्ष में और जाति तथा नारी के प्रति व्यवहार के बारे में ब्राह्मणवादी विचारधारा के विरुद्ध अपने प्रबल तर्क प्रस्तुत किए। इसके अलावा वे सभी प्रकार के कर्मकांडों और मूर्तिपूजा के विरोधी थे।

वीरशैवों के वचन

नीचे कुछ *वचन* या कथन दिए गए हैं, जो बसवन्ना के बताए जाते हैं :

धनवान लोग
शिव के लिए मंदिर बनाते हैं।
मैं
एक गरीब आदमी
क्या करूँगा?

मेरी टाँगें खंभे हैं,
शरीर तीर्थ मंदिर है
सिर उसकी छतरी है
सोने की बनी हुई।

ज़रा सुनो, नदी संगम के प्रभु,
खड़ी हुई चीज़ें कभी गिर जाएँगी,
लेकिन चलने वाली सदा चलती रहेंगी।

बसवन्ना, ईश्वर को कौन-सा मंदिर अर्पित कर रहा है?

महाराष्ट्र के संत

तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक महाराष्ट्र में अनेकानेक संत कवि हुए, जिनके सरल मराठी भाषा में लिखे गए गीत आज भी जन-मन को प्रेरित करते हैं। उन संतों में सबसे महत्त्वपूर्ण थे—ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम तथा सखूबाई जैसी स्त्रियाँ तथा चोखामेळा का परिवार, जो 'अस्पृश्य' समझी जाने वाली महार जाति का था। भक्ति की यह क्षेत्रीय परंपरा पंढरपुर में विठ्ठल (विष्णु का एक रूप) पर और जन-मन के हृदय में विराजमान व्यक्तिगत देव (ईश्वर) संबंधी विचारों पर केंद्रित थी।

इन संत-कवियों ने सभी प्रकार के कर्मकांडों, पवित्रता के ढोंगों और जन्म पर आधारित सामाजिक अंतरों का विरोध किया। यहाँ तक कि उन्होंने संन्यास के विचार को भी ठुकरा दिया और किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह रोज़ी-रोटी कमाते हुए परिवार के साथ रहने और विनम्रतापूर्वक ज़रूरतमंद साथी व्यक्तियों की सेवा करते हुए जीवन बिताने को अधिक पसंद किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि असली भक्ति दूसरों के दु:खों को बाँट

लेना है। इससे एक नए मानवतावादी विचार का उद्भव हुआ। जैसा कि सुप्रसिद्ध गुजराती संत नरसी मेहता ने कहा था–"वैष्णव जन तो तेने कहिए पीर पराई जाने रे।"

सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न

यह संत तुकाराम का एक 'अभंग' (मराठी भक्तिगीत) है:

जो दीन-दुखियों, पीड़ितों को
अपना समझता है
वही संत है
क्योंकि ईश्वर उसके साथ है।

वह हर एक परित्यक्त व्यक्ति को
अपने दिल से लगाए रखता है
वह एक दास के साथ भी
अपने पुत्र जैसा व्यवहार करता है।

तुकाराम का कहना है
मैं यह कहते-कहते
कभी नहीं थकूँगा
ऐसा व्यक्ति
स्वयं ईश्वर है।

यहाँ चोखामेळा के पुत्र द्वारा रचित एक *अभंग* दिया जा रहा है:

तुमने हमें नीची जाति का बनाया
मेरे महाप्रभु, तुम स्वयं यह स्थिति स्वीकार करके तो देखो
हमें जीवनभर जूठन खानी पड़ती है
इसके लिए मेरे प्रभु तुम्हें शर्म आनी चाहिए।

तुम तो हमारे घर में खा चुके हो
तुम इससे कैसे इंकार कर सकते हो?
चोखा का (बेटा) करमामेला पूछता है
तुमने मुझे ज़िंदगी क्यों दी?

? *इन रचनाओं में अभिव्यक्त सामाजिक व्यवस्था के विचारों के बारे में चर्चा करें।*

नाथपंथी, सिद्ध और योगी

चित्र 3
आग के आस-पास तपस्वियों का समूह

इस काल में अनेक ऐसे धार्मिक समूह उभरे, जिन्होंने साधारण तर्क-वितर्क का सहारा लेकर रूढ़िवादी धर्म के कर्मकांडों और अन्य बनावटी पहलुओं तथा समाज-व्यवस्था की आलोचना की। उनमें नाथपंथी, सिद्धाचार और योगी जन उल्लेखनीय हैं। उन्होंने संसार का परित्याग करने का समर्थन किया। उनके विचार से निराकार परम सत्य का चिंतन-मनन और उसके साथ एक हो जाने की अनुभूति ही मोक्ष का मार्ग है। इसके लिए उन्होंने योगासन, प्राणायाम और चिंतन-मनन जैसी क्रियाओं के माध्यम से मन एवं शरीर को कठोर प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पर बल दिया। ये समूह खासतौर पर 'नीची' कही जाने वाली जातियों में बहुत लोकप्रिय हुए। उनके द्वारा की गई रूढ़िवादी धर्म की आलोचना ने भक्तिमार्गीय धर्म के लिए आधार तैयार किया, जो आगे चलकर उत्तरी भारत में लोकप्रिय शक्ति बना।

इस्लाम और सूफ़ी मत

संतों और सूफ़ियों में बहुत अधिक समानता थी, यहाँ तक कि यह भी माना जाता है कि उन्होंने आपस में कई विचारों का आदान-प्रदान किया और उन्हें अपनाया। सूफ़ी मुसलमान रहस्यवादी थे। वे धर्म के बाहरी आडंबरों को अस्वीकार करते हुए ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति तथा सभी मनुष्यों के प्रति दयाभाव रखने पर बल देते थे।

इस्लाम ने एकेश्वरवाद यानी एक अल्लाह के प्रति पूर्ण समर्पण का दृढ़ता से प्रचार किया। उसने मूर्तिपूजा को अस्वीकार कर दिया और उपासना पद्धतियों को सामूहिक प्रार्थना-नमाज़-का रूप देकर, उन्हें काफ़ी सरल बना दिया। साथ ही मुसलिम विद्वानों (उलेमा) ने 'शरियत' नाम से एक धार्मिक कानून बनाया। सूफ़ी लोगों ने मुसलिम धार्मिक विद्वानों द्वारा निर्धारित विशद् कर्मकांड और आचार-संहिता को बहुत कुछ अस्वीकार कर दिया। वे ईश्वर के साथ ठीक उसी प्रकार जुड़े रहना चाहते थे, जिस प्रकार एक प्रेमी, दुनिया की परवाह किए बिना अपनी प्रियतमा के साथ जुड़े

रहना चाहता है। संत-कवियों की तरह सूफ़ी लोग भी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए काव्य रचना किया करते थे। गद्य में एक विस्तृत साहित्य तथा कई किस्से-कहानियाँ इन सूफ़ी संतों के इर्द-गिर्द विकसित हुईं। मध्य एशिया के महान सूफ़ी संतों में गज़्ज़ाली, रूमी और सादी के नाम उल्लेखनीय हैं। नाथपंथियों, सिद्धों और योगियों की तरह, सूफ़ी भी यही मानते थे कि दुनिया के प्रति अलग नज़रिया अपनाने के लिए दिल को सिखाया-पढ़ाया जा सकता है। उन्होंने किसी औलिया या पीर की देख-रेख में *ज़िक्र* (नाम का जाप), चिंतन, *समा* (गाना), *रक्स* (नृत्य), नीति-चर्चा, साँस पर नियंत्रण आदि के ज़रिए प्रशिक्षण की विस्तृत रीतियों का विकास किया। इस प्रकार सूफ़ी उस्तादों की पीढ़ियों, सिलसिलाओं का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें से हरेक सिलसिला निर्देशों व धार्मिक क्रियाओं का थोड़ा-बहुत अलग तरीका अपनाती थी।

चित्र 4
आनंदित सूफ़ी

चित्र 5
कुरान की पांडुलिपि से लिया गया एक पृष्ठ, दक्कन, परवर्ती पंद्रहवीं शताब्दी

ग्यारहवीं शताब्दी से अनेक सूफ़ी जन मध्य एशिया से आकर हिंदुस्तान में बसने लगे थे। दिल्ली सल्तनत (अध्याय 3) की स्थापना के साथ यह प्रक्रिया उस समय और भी मज़बूत हो गई, जब उपमहाद्वीप में सर्वत्र बड़े-बड़े अनेक सूफ़ी केंद्र विकसित हो गए। चिश्ती सिलसिला इन सभी सिलसिलों में सबसे अधिक प्रभावशाली था। इसमें औलियाओं की एक लंबी परंपरा थी, जैसे–अजमेर के ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, दिल्ली के क़ुत्बउद्दीन बख्तियार काकी, पंजाब के बाबा फ़रीद, दिल्ली के ख़्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया और गुलबर्ग के बंदानवाज़ गिसुदराज़।

ख़ानक़ाह
सूफ़ी संस्था जहाँ सूफ़ी संत अकसर रहते भी हैं।

सूफ़ी संत अपने *ख़ानक़ाहों* में विशेष बैठकों का आयोजन करते थे जहाँ सभी प्रकार के भक्तगण, जिनमें शाही घरानों के लोग तथा अभिजात और आम लोग भी शामिल होते थे। इन ख़ानक़ाहों में आते थे। वे आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करते थे। अपनी दुनियादारी की समस्याओं को सुलझाने के लिए संतों से आशीर्वाद माँगते थे अथवा संगीत तथा नृत्य के जलसों में ही शामिल होकर चले जाते थे।

अकसर लोग यह समझते थे कि सूफ़ी औलियाओं के पास चमत्कारिक शक्तियाँ होती हैं, जिनसे आम लोगों को बीमारियों और तकलीफ़ों से छुटकारा मिल सकता है। सूफ़ी संत की दरगाह एक तीर्थस्थल बन जाता था, जहाँ सभी ईमान-धर्म के लोग हज़ारों की संख्या में इकट्ठे होते थे।

चित्र 6
सभी पृष्ठभूमियों के भक्त, सूफ़ी दरगाहों पर जाते हैं।

मालिक (प्रभु) की खोज

जलालुद्दीन रूमी तेरहवीं सदी का महान सूफ़ी शायर था। वह ईरान का रहने वाला था और उसने फ़ारसी में काव्य रचना की। उसकी कृति का एक उद्धरण प्रस्तुत है:

वह ईसाइयों की सूली पर नहीं था। मैं हिंदू मंदिरों में गया। वहाँ भी उसका कोई नामोनिशान नहीं था। न तो वह ऊँचाइयों में मिला न ही खाइयों में... मैं मक्का के क़ाबा भी गया। वह वहाँ नहीं था। मैंने उसके बारे में दार्शनिक एविसेन्ना से पूछा। वह एविसेन्ना की पहुँच से परे था... मैंने अपने दिल में झाँका। यही उसकी जगह थी। वहीं मैंने उसे पाया। वह और कहीं नहीं था।

उत्तर भारत में धार्मिक बदलाव

तेरहवीं सदी के बाद उत्तरी भारत में भक्ति आंदोलन की एक नयी लहर आई। यह एक ऐसा युग था, जब इस्लाम, ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म, सूफ़ीमत, भक्ति की विभिन्न धाराओं ने और नाथपंथियों, सिद्धों तथा योगियों ने परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित किया। हमने देखा कि नए नगरों (अध्याय 6) और राज्यों (अध्याय 2, 3 और 4) का उद्‌भव हो रहा था और लोग अपने लिए नए-नए व्यवसाय और नयी-नयी भूमिकाएँ खोज रहे थे। ऐसे लोग विशेष रूप से शिल्पी, कृषक, व्यापारी और मज़दूर, इन नए संतों के विचारों को सुनने के लिए इकट्ठे हो जाते थे। फिर वे उनका प्रचार करते थे।

चित्र 7
चैतन्यदेव, सोलहवीं शताब्दी के बंगाल के एक भक्ति संत। इन्होंने कृष्ण-राधा के प्रति निष्काम भक्ति-भाव का उपदेश दिया। इस चित्र में आप उनके अनुयायियों के एक समूह को आनंद में नाचते-गाते हुए देख सकते हैं।

उनमें से कबीर और बाबा गुरु नानक जैसे कुछ संतों ने सभी आडंबरपूर्ण रूढ़िवादी धर्मों को अस्वीकार कर दिया। तुलसीदास और सूरदास जैसे कुछ अन्य संतों ने उस समय विद्यमान विश्वासों तथा पद्धतियों को स्वीकार करते हुए उन्हें सब की पहुँच में लाने का प्रयत्न किया। तुलसीदास ने ईश्वर को राम के रूप में धारण किया। अवधी (पूर्वी उत्तर प्रदेश की बोली) में लिखी गई तुलसीदास की रचना *रामचरितमानस* उनके भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति और साहित्यिक कृति, दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। सूरदास श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनकी रचनाएँ *सूरसागर,*

मानचित्र 1
मुख्य भक्ति संत तथा उनसे जुड़े क्षेत्र

सूरसारावली और *साहित्य लहरी* में संग्रहित हैं एवं उनके भक्ति भाव को अभिव्यक्त करती हैं। असम के शंकरदेव (परवर्त्ती 15वीं शताब्दी) जो इन्हीं के समकालीन थे, ने विष्णु की भक्ति पर बल दिया और असमिया भाषा में कविताएँ तथा नाटक लिखे। उन्होंने ही 'नामघर' (कविता पाठ और प्रार्थना गृह) स्थापित करने की पद्धति चलाई, जो आज तक चल रही है।

इस परंपरा में दादू दयाल, रविदास और मीराबाई जैसे संत भी शामिल थे। मीराबाई एक राजपूत राजकुमारी थीं, जिनका विवाह सोलहवीं शताब्दी में मेवाड़ के एक राजसी घराने में हुआ था। मीराबाई, रविदास, जो 'अस्पृश्य' जाति के माने जाते थे, की अनुयायी बन गईं। वे कृष्ण के प्रति समर्पित थीं और उन्होंने अपने गहरे भक्ति-भाव को कई भजनों में अभिव्यक्त किया है।

उनके गीतों ने 'उच्च' जातियों के रीतियों-नियमों को खुली चुनौती दी तथा ये गीत राजस्थान व गुजरात के जनसाधारण में बहुत लोकप्रिय हुए।

इन संतों में से अधिकाँश का विशिष्ट अभिलक्षण यह है कि इनकी कृतियाँ क्षेत्रीय भाषाओं में रची गईं और इन्हें आसानी से गाया जा सकता था। इसीलिए ये बेहद लोकप्रिय हुईं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से चलती रहीं। प्राय: इन गीतों के प्रसारण में सर्वाधिक निर्धन, सर्वाधिक वंचित समुदाय और महिलाओं की भूमिका रही है। प्रसारण की इस प्रक्रिया में ये सभी लोग अकसर अपने अनुभव भी जोड़ देते थे। इस तरह आज मिलने वाले गीत, संतों की रचनाएँ तो हैं हीं, साथ-साथ उन पीढ़ियों के लोगों की रचनाएँ मानी जा सकती हैं, जो उन्हें गाया करते थे। वे हमारी जीती-जागती जन संस्कृति का अंग बन गई हैं।

राणा के राजमहल से परे

मीरा द्वारा रचा गया गीत :

लोक लाज कुलराँ मरजादाँ जग माँ जेक णा राख्याँ री

महल अटारी हम सब त्यागे

त्याग्यो थाँरो बसनों सहर

राणाजी थे क्याँने राखो म्हाँसू बैर

बिख रो प्यालो राणाँ भेज्या,

पीवाँ मीरा हाँसा री

बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो

राणा थे क्याँने राखो महाँसू बैर

? आपके विचार से मीरा ने राणा का राजमहल क्यों छोड़ा?

चित्र 8
मीराबाई

कबीर – नज़दीक से एक नज़र

कबीर संभवतः पंद्रहवीं-सोलहवीं सदी में हुए थे। वे एक अत्यधिक प्रभावशाली संत थे। उनका पालन-पोषण बनारस में या उसके आस-पास के एक मुसलमान जुलाहा यानी बुनकर परिवार में हुआ था। उनके जीवन के बारे में हमारे पास बहुत कम विश्वसनीय जानकारी है। हमें उनके विचारों की जानकारी उनकी साखियों और पदों के विशाल संग्रह से मिलती है, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि इनकी रचना तो कबीर ने की थी परंतु ये घुमंतू भजन-गायकों द्वारा गाए जाते थे। इनमें से कुछ भजन *गुरु ग्रंथ साहब*, *पंचवाणी* और *बीजक* में संग्रहित एवं सुरक्षित हैं।

सच्चे प्रभु की खोज में

कबीर की एक रचना :

चित्र 9
करघे पर काम
करते हुए कबीर

अलह राम जीऊँ तेरे नाँइ,
बंदे ऊपरि मिहर करो मेरे साँई।
क्या ले माटी भुँइ सूँ,
मारैं क्या जल देह न्हवाये।
जो करें मसकीन सतावे,
गून ही रहै छिपायें।।
ब्राह्मण व्यारसि करै चौबीसौं,
काजी महरम जाँन।
ग्यारस मास जुदे क्यू कीये,
एकहि माहि समान।।
पूरबि दिसा हरी का बासा,
पछिम अलह मुकामा।
दिल ही खोजि दिलै भीतरि,
इहाँ राम रहिमानाँ।।

? *इन दोहों में दिए गए विचार किस रूप में बसवन्ना और जलालुद्दीन रूमी के विचारों से समानता या भिन्नता रखते हैं?*

कबीर के उपदेश प्रमुख धार्मिक परंपराओं की पूर्ण एवं प्रचंड अस्वीकृति पर आधारित थे। उनके उपदेशों में ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म और इस्लाम दोनों की बाह्य आंडबरपूर्ण पूजा के सभी रूपों का मज़ाक उड़ाया गया है। उनके काव्य की भाषा बोलचाल की हिंदी थी, जो आम आदमियों द्वारा आसानी से समझी जा सकती थी। उन्होंने कभी-कभी रहस्यमयी भाषा का भी प्रयोग किया, जिसे समझना कठिन होता है।

कबीर, निराकार परमेश्वर में विश्वास रखते थे। उन्होंने यह उपदेश दिया कि भक्ति के माध्यम से ही मोक्ष यानी मुक्ति प्राप्त हो सकती है। हिंदू तथा मुसलमान दोनों लोग उनके अनुयायी हो गए।

बाबा गुरु नानक – नज़दीक से एक नज़र

कबीर की अपेक्षा बाबा गुरु नानक (1469-1539) के बारे में हम कहीं अधिक जानते हैं। तलवंडी (पाकिस्तान में ननकाना साहब) में जन्म लेने वाले बाबा गुरु नानक ने करतारपुर (रावी नदी के तट पर डेरा बाबा नानक) में एक केंद्र स्थापित करने से पहले कई यात्राएँ की। उन्होंने अपने अनुयायियों के लिए करतारपुर में एक नियमित उपासना पद्धति अपनाई, जिसके अंतर्गत उन्हीं के शबदों (भजनों) को गाया जाता था। उनके अनुयायी अपने-अपने पहले धर्म या जाति अथवा लिंग-भेद को नज़रअंदाज़ करके एक सांझी रसोई में इकट्ठे खाते-पीते थे। इसे 'लंगर' कहा जाता था। बाबा गुरु नानक ने उपासना और धार्मिक कार्यों के लिए जो जगह नियुक्त की थी, उसे 'धर्मसाल' कहा गया। आज इसे गुरुद्वारा कहते हैं।

चित्र 10
धार्मिक महानुभावों से चर्चा करते बाबा गुरु नानक, जब वे युवक थे।

1539 में अपनी मृत्यु के पूर्व बाबा गुरु नानक ने एक अनुयायी को अपना उत्तराधिकारी चुना। इनका नाम लहणा था, लेकिन ये गुरु अंगद के नाम से जाने गए। 'गुरु अंगद' नाम का महत्त्व यह था कि गुरु अंगद, बाबा गुरु नानक के ही अंग माने गए। गुरु अंगद ने बाबा गुरु
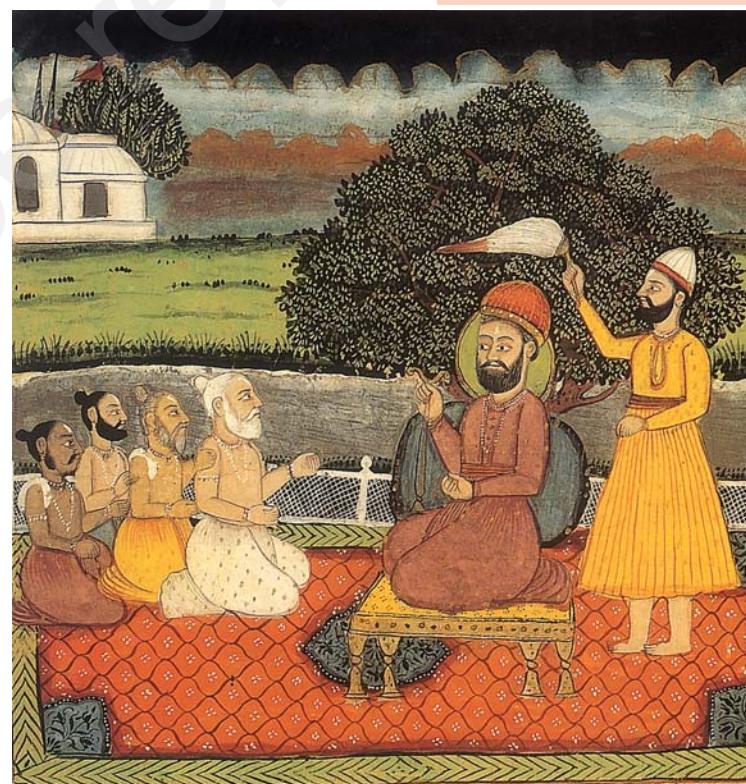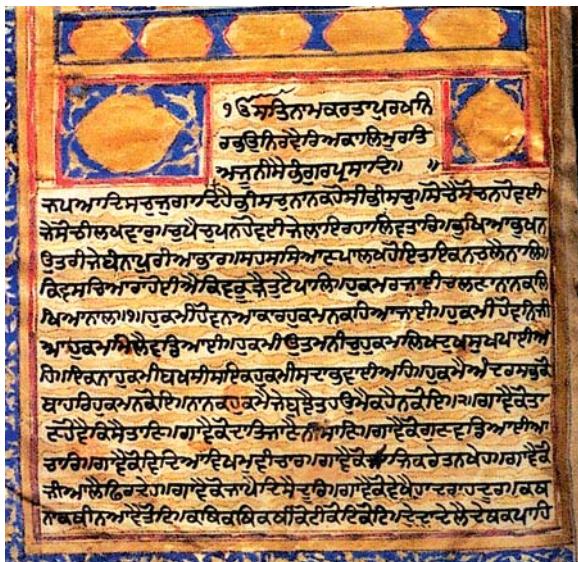
चित्र 11
गुरु ग्रंथ साहब की एक आरंभिक पांडुलिपि

नानक की रचनाओं का संग्रह किया और उस संग्रह में अपनी कृतियाँ भी जोड़ दीं। संग्रह एक नई लिपि गुरमुखी में लिखा गया था। गुरु अंगद के तीन उत्तराधिकारियों ने भी अपनी रचनाएँ 'नानक' के नाम से लिखीं। इन सभी का संग्रह गुरु अर्जन ने 1604 में किया। इस संग्रह में शेख फरीद, संत कबीर, भगत नामदेव और गुरु तेग़बहादुर जैसे सूफ़ियों, संतों और गुरुओं की वाणी जोड़ी गई। 1706 में इस वृहत् संग्रह को गुरु तेगबहादुर के पुत्र व उत्तराधिकारी गुरु गोबिंद सिंह ने प्रमाणित किया। आज इस संग्रह को सिक्खों के पवित्र ग्रंथ *गुरु ग्रंथ साहब* के रूप में जाना जाता है।

सोलहवीं शताब्दी में बाबा गुरु नानक के उत्तराधिकारियों के नेतृत्व में उनके अनुयायियों की संख्या का विस्तार हुआ। ये अनुयायी कई जातियों के थे, परंतु इनमें व्यापारी, कृषक और शिल्पकार ज़्यादा थे। इसकी वजह यह हो सकती है कि बाबा गुरु नानक इस बात पर बल दिया करते थे कि उनके अनुयायी गृहस्थ हों और उपयोगी व उत्पादक पेशों से जुड़े हों। अनुयायियों से यह आशा भी की जाती थी कि वे नए समुदाय के सामान्य कोष में योगदान देंगे।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ से केंद्रीय गुरुद्वारा हरमंदर साहब (स्वर्ण मंदिर) के आस-पास रामदासपुर शहर (अमृतसर) विकसित होने लगा था। प्रशासन में यह वस्तुतः स्वायत्त था। आधुनिक इतिहासकार इस युग के सिक्ख समुदाय को 'राज्य के अंतर्गत राज्य' मानते हैं। मुग़ल सम्राट जहाँगीर इस समुदाय को एक संभावित खतरा मानता था। उसने 1606 में गुरु अर्जन को मृत्युदण्ड देने का आदेश दिया। सत्रहवीं शताब्दी में सिक्ख आंदोलन का राजनीतिकरण शुरू हो गया, जिसका दूरगामी परिणाम यह हुआ कि 1699 में गुरु गोबिंद सिंह ने खालसा की संस्था का निर्माण किया। 'खालसा पंथ' के नाम से जाना जाने वाला सिक्ख समुदाय अब एक राजनैतिक सत्ता बन गया।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों की बदलती हुई ऐतिहासिक परिस्थितियों ने सिक्ख आंदोलन के विकास को प्रभावित किया। शुरू से ही बाबा गुरु नानक के विचारों का सिक्ख आंदोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होनें एक ईश्वर की उपासना के महत्त्व पर ज़ोर दिया। उन्होंने आग्रह किया कि जाति, धर्म अथवा लिंग-भेद, मुक्ति प्राप्ति के लिए कोई मायने नहीं रखते हैं।

उनके लिए मुक्ति किसी निष्क्रिय आनंद की स्थिति नहीं थी, बल्कि सक्रिय जीवन व्यतीत करने के साथ-साथ सामाजिक प्रतिबद्धता की निरंतर कोशिशों में ही निहित थी। अपने उपदेश के सार को व्यक्त करने के लिए उन्होंने तीन शब्दों का प्रयोग किया : *नाम, दान* और *इस्नान* (स्नान)। नाम से उनका तात्पर्य, सही उपासना से था। दान का तात्पर्य था, दूसरों का भला करना और इस्नान का तात्पर्य आचार-विचार की पवित्रता। आज उनके उपदेशों को *नाम-जपना, किर्त-करना* और *वंड-छकना* के रूप में याद किया जाता है। ये अवधारणाएँ भी उचित विश्वास और उपासना, ईमानदारीपूर्ण निर्वाह और संसाधनों को मिल-बाँटकर प्रयोग करना यानी कि दूसरों की मदद के महत्त्व को रेखांकित करती हैं। इस तरह बाबा गुरु नानक के समानता के विचारों के सामाजिक-राजनीतिक मायने थे। शायद इसी बात से हमें बाबा गुरु नानक और उनके अनुयायियों के इतिहास और कबीर, रविदास एवं दादू जैसे संतों और उनके अनुयायियों (जिनके विचार बाबा गुरु नानक के विचारों के काफ़ी करीब थे) के इतिहास में फ़र्क को समझने में मदद मिलती है।

अन्यत्र

मार्टिन लूथर और धर्मसुधार आंदोलन

सोलहवीं सदी का समय यूरोप में भी एक धार्मिक अंत:क्षोभ यानी उथल-पुथल का काल था, तब ईसाई धर्म में अनेक परिवर्तन हुए, जिन्हें लाने वाले महत्त्वपूर्ण नेताओं में से एक थे–मार्टिन लूथर (1483-1546)। लूथर ने यह महसूस किया कि रोमन कैथोलिक चर्च के अनेक आचार-व्यवहार बाइबिल की शिक्षाओं के विरुद्ध जाते हैं। लूथर ने लैटिन भाषा की बजाय आम लोगों की भाषा के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया और बाइबिल का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। वे दंडमोचन की उस प्रथा के घोर विरोधी थे, जिसके अंतर्गत पापकर्मों को क्षमा कराने के लिए चर्च को दान दिया जाता था। छापेखाने के बढ़ते हुए प्रयोग से उनकी रचनाओं का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार हुआ। अनेक प्रोटेस्टैंट ईसाई संप्रदाय अपना उद्भव लूथर की शिक्षाओं में ही खोजते हैं।
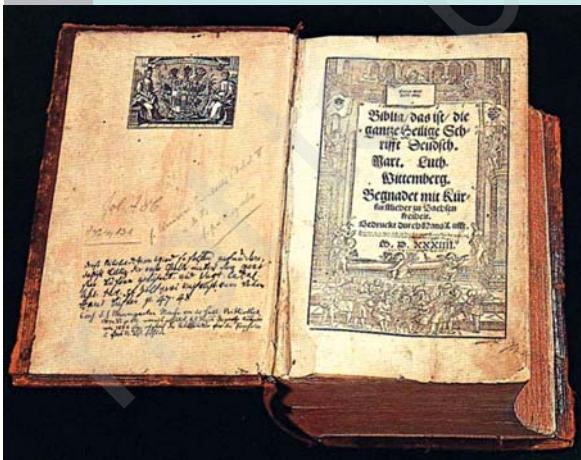
चित्र 12
मार्टिन लूथर द्वारा जर्मन भाषा में अनुवादित बाइबिल का शीर्षक पृष्ठ

कल्पना करें

आप एक बैठक में भाग ले रहे हैं, जहाँ एक संत जाति-व्यवस्था पर चर्चा कर रहे हैं। इस बातचीत का वर्णन करें।

फिर से याद करें

1. निम्नलिखित में मेल बैठाएँ :

बुद्ध	नामघर
शंकरदेव	विष्णु की पूजा
निज़ामुद्दीन औलिया	सामाजिक अंतरों पर सवाल उठाए
नयनार	सूफ़ी संत
अलवार	शिव की पूजा

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

(क) शंकर ____________ के समर्थक थे।

(ख) रामानुज ____________ के द्वारा प्रभावित हुए थे।

(ग) ____________, ____________ और ____________ वीरशैव मत के समर्थक थे।

(घ) ____________ महाराष्ट्र में भक्ति परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था।

3. नाथपंथियों, सिद्धों और योगियों के विश्वासों और आचार-व्यवहारों का वर्णन करें।

4. कबीर द्वारा अभिव्यक्त प्रमुख विचार क्या-क्या थे? उन्होंने इन विचारों को कैसे अभिव्यक्त किया?

बीज शब्द

वीरशैव मत

भक्ति

सूफ़ी

ख़ानक़ाह

आइए समझें

5. सूफ़ियों के प्रमुख आचार-व्यवहार क्या थे?

6. आपके विचार से बहुत-से गुरुओं ने उस समय प्रचलित धार्मिक विश्वासों तथा प्रथाओं को अस्वीकार क्यों किया?

7. बाबा गुरु नानक की प्रमुख शिक्षाएँ क्या थीं?

आइए विचार करें

8. जाति के प्रति वीरशैवों अथवा महाराष्ट्र के संतों का दृष्टिकोण कैसा था? चर्चा करें।

9. आपके विचार से जनसाधारण ने मीरा की याद को क्यों सुरक्षित रखा?

आइए करके देखें

10. पता लगाएँ कि क्या आपके आस-पास भक्ति परंपरा के संतों से जुड़ी हुई कोई दरगाह, गुरुद्वारा या मंदिर है। इनमें से किसी एक को देखने जाइए और बताइए कि वहाँ आपने क्या देखा और सुना।

11. इस अध्याय में अनेक संत कवियों की रचनाओं के उद्धरण दिए गए हैं। उनकी कृतियों के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करें और उनकी उन कविताओं को नोट करें, जो यहाँ नहीं दी गई हैं। पता लगाएँ कि क्या ये गाई जाती हैं। यदि हाँ, तो कैसे गाई जाती हैं और कवियों ने इनमें किन विषयों पर लिखा था।

12. इस अध्याय में अनेक संत-कवियों के नामों का उल्लेख किया गया है, परंतु कुछ की रचनाओं को इस अध्याय में शामिल नहीं किया गया है। उस भाषा के बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करें, जिसमें ऐसे कवियों ने अपनी कृतियों की रचना की। क्या उनकी रचनाएँ गाई जाती थीं? उनकी रचनाओं का विषय क्या था?